

गंगा-पुस्तकमाला का १६०वाँ पुष्प

कुबेर

[सामाजिक उपन्यास]

लेखक

श्रीदेवीप्रसाद धवन 'विकल',

[ससुराज, आत्महत्या आदि के रचयिता]



मिलने का पता—

गंगा-ग्रंथागार

३६. लाट्टी रोड

लखनऊ

द्वितीय मुद्रा:

मजिद २११,

म० २००१ वि०

[सादी १॥]

प्रकाशक
श्रीदुलारेलाळ
अध्यक्ष गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
लखनऊ

अन्य प्राप्ति-स्थान—

१. दिल्ली—दिल्ली-गंगा-प्रयागार, चर्खेवाला
२. प्रयाग—प्रयाग-गंगा-ग्रंथागार, गोविंद-भवन,
शिवचरणलाल रोड
३. काशी—काशी-गंगा-ग्रंथागार, मच्छोदरी-पार्क
४. पटना—पटना-गंगा-ग्रंथागार, महुआ-टोली

मुद्रक
श्रीदुलारेलाळ
अध्यक्ष गंगा फाइनआर्ट-प्रेस
लखनऊ



जिनके चरणों में घेठकर यह कला सीख सका हूँ, उन्हीं
प्रसिद्ध कलाकार—

पं० विश्वभरनाथ शर्मा कौशिक'
को यह छोटी-सी कृति सभ्रद्धा भेंट करता हूँ ।

देवीप्रसाद धवन 'विकल'

कुछ अपनी

'कुचेर' घटना-प्रधान उपन्यास है, भाव-प्रधान उपन्यास लिखने की समता अभी मुझसे कोसों दूर है। 'कुचेर' को समाप्त करके पाठकों के सम्मुख लाने की मेरी बहुत दिनों से अभिलाषा थी, किंतु दिल की उड़ान और सक्रियता के बीच परिस्थितियों की एक प्राचीर-सी पड़ी रहती है। आज यह श्रम सफल हुआ, और 'कुचेर' पाठकों के सम्मुख है।

मैं का चुका हूँ, 'कुचेर' घटना-प्रधान उपन्यास है, उसके पात्र जीते-जागते, चलते-फिरते आज के व्यक्ति हैं। घटना-प्रधान उपन्यास में न तो आदर्शवाद का आश्रय लिया ही जाता है, और न ही उपन्यास में आदर्शवाद का आश्रय लेने का हामी हूँ। इससे तो पात्रों की मनोवैज्ञानिकता नष्ट होकर वे केवल लेखनी की शीशा-भात्र रह जाते हैं।

आदर्शवाद मनोविज्ञान का शत्रु है, और बिना मनोविज्ञान के पुत्र के पात्रों की मौलिकता आदर्शवाद की बलि-वेदी पर भेंट चढ़ जाती है। जिस पात्र को आदर्शवाद की मोर्ची मदर पर ले जाने की चेष्टा की जायगी, वह कौरी कतरना का चित्र होकर रह जायगा। वह किसी व्यक्ति विशेष का मरणाश्री न्यायाधिक चित्रण नहीं हो सकेगा। मनोविज्ञान का विचारों को समझा भटकर बनता है। यह प्रवृत्तियों का दास है, और प्रवृत्तियाँ किसी याद की परमंत्र नहीं होती, अपरूप चरित्र-चित्रण और आदर्शवाद का कोई संबंध नहीं हो सकेगा।

और, 'कुचेर' तो मनोविज्ञान का विचारों है, वह समझा भटकर-

कर चलना जानता है। उसके कार्यों में आदर्शवाद का पुट देना उसके निर्माणोद्देश्य की हत्या करना है। वह मनुष्य है, उसके हृदय है, वह परोपकारी है, किंतु अपनी दुर्बलताओं का वह स्वयं शिकार है। वह अपने ही भावों में सोचता है, अपने ही मार्ग पर चलता है, और अपनी निज का हृदय रखता है।

परिस्थिति घटना की जर्मनी है, और घटनाओं को क्रम-बद्ध करके लिखा जाय, वही उपन्यास है। 'कुबेर' इसी प्रकार का एक उपन्यास है। आशा है, हिंदी-संसार इसका आदर करेगा।

पात्रों के चित्रण की सफलता में मेरे कतिपय मित्रों का हाथ है। उनमें श्रीबाँकेविहारीलाल अग्रवाल तथा पूज्य प० मदनगोपाल मिश्र प्रमुख हैं। मैं उन्हें बिना धन्यवाद दिए नहीं रह सकता।

लेखक

अकलौकन



रमक का आग्रह है कि मैं इस उपन्यास की भूमिका लिख दूँ, यद्यपि मैं नहीं मानता कि उपन्यास के लिये भूमिका कोई आवश्यक अंग है। उपन्यास में भूमिका देने की प्रथा उस समय प्रारंभ हुई, जब लेखक को अपनी रचना पर पूरा सतोष नहीं होता था। आज की स्थिति दूसरी है। आज सतोष और विश्वास लेखक से पहले होता आदिष्ट, रचना तो उसके बाद की वस्तु है।

एक युग था, जब उपन्यास केवल मनोरंजन की वस्तु समझा जाता था। कल्पना चित्रों की उसमें प्रधानता रहती थी। ऐसे उपन्यास समाज और जीवन की समस्याओं पर प्रकाश न

डालकर व्यक्तियों के विशिष्ट चरित्र पर आधारित रहते थे। कथा में घटना-वैचित्र्य बढ़ाकर कोई विशेष चमत्कार-मात्र उत्पन्न कर देना उस समय की कला थी। ऐसे उपन्यास मनुष्य के ऊपर-ही-ऊपर तैरते थे। मानवात्मा के स्तर-स्तर को स्पर्श करने की ओर उनकी विशेष चेष्टा न थी। जीवन के स्थूल व्यापार लेकर कल्पना का एक महल खड़ा कर देना ही उस काल की उपन्यास-कला का एकमात्र उद्देश्य रहता था। सच्चेप से कहना चाहें तो उस काल के उपन्यास पाठक के लिये एक भूलभुलैयाँ के किस्म की चीज हुआ करते थे। पाठक भी केवल काल-क्षेप के लिये उपन्यास हाथ में लेते थे। जो लेखक पाठक को उपन्यास के अवलोकन में जितना अधिक तन्मय कर देने की शक्ति रखता था, वह उतना ही सफल माना जाता था। हिंदी-उपन्यास का प्रारंभिक युग कुछ इसी प्रकार का था।

इसके बाद आया प्रेमचंद-युग। और, प्रेमचंदजी की विशेषता थी चरित्र-चित्रण। उनकी कथा का आधार रहता था समाज और उसकी समस्याएँ। उपन्यास में वे एक विशिष्ट चरित्र का निर्माण करते थे। उनके उपन्यास का नायक केंद्र बिंदु होता था। शेष पात्र उसके चारों ओर घूमते थे। आदर्श और उनकी विरोधिनी प्रवृत्तियों के संघर्ष का घटाटोप उपस्थित करना उनका ध्येय रहता था। उनकी कथा का नायक प्रायः मानवीय दुर्बलताओं में परे होता था—

एक ऐसा व्यक्ति जो मनुष्य होकर भी मानववर्ग का प्राणी न होकर लगभग देवोपम होना था। उसके गुणों में यह विशेषता रहती थी कि दुर्गुणों की कोई सत्ता ही उसके आगे नहीं रहिर हो पाती थी। अभिप्राय यह कि चित्र में आदर्श-स्थापन की ओर उत्तरी विशेष गति थी।

फिर हमने भी अधिक (और मैं तो कहना चाहूँगा कि सर्वाधिक पुष्ट) उनकी विशयता या एक नए सनार की सृष्टि करना। कल्पना-चित्र होकर भी उनके उपन्यास एक ऐसा आनाकरण बना देते हैं कि पाठक अनुभव करने लगता है मानो वह स्वयं भी उन्हीं जन-समूह का एक प्राणी है। पात्रों की सृष्टि में उनकी विशेषता है चित्र की स्थिरता। जान पड़ता है, उनका प्रत्येक पात्र अपना एक निश्चित स्वयं है। उसमें झिगना यह नहीं जानता। सेवा त्याग, उदारता, पर-दुःख-कातरता और कष्ट-महिम्ना उनके आदर्श हैं और आज की सभ्यता के जो दुर्गुण हैं—वैभव के प्रति एक प्रलोभन, एक उन्कट लिप्ता व्यक्तिगत उन्नति, ईशत-परस्त्री, कपटा-सम्पन्न और इन सबके भीतर जीमि लपलपाती हुई भोगलिप्ता, अपने आदर्शों के साथ वे इन्हीं उन्नतियों का मर्यादित वर्णन करने चलते हैं। इसका क्या-संगठन भी इन्हीं उपायनों की नीति पर स्थिर माना है। जीवन और समाज के लिये अपने विशेष संदेश की छात्र प्रदान और उनका प्रचार करना वे उपन्यासकार के लिये आवश्यक मानते हैं।

प्रेमचन्द-युग के उपन्यासकारों में पंडित विश्वभरनाथ शर्मा कौशिक श्रीवृंदावनलाल वर्मा, श्रीचतुरसेन शास्त्री, पांडेय वेचन शर्मा उग्र तथा श्रीप्रतापनारायण श्रीवास्तव प्रमुख हैं।

यहाँ प्रश्न उठता है कि क्या उपर्युक्त सभी उपन्यासकार प्रेमचन्दजी की ही भूमि पर चलते हैं? इन्हें प्रेमचन्द-वर्ग में स्थापित करने का कारण?

उत्तर स्पष्ट है कि ये सभी उपन्यासकार कथा के सगठन और उद्देश्य के प्रसार में लगभग एक-से हैं। आज समाज की जो स्थिति है, उसके सुधार की ओर ये सभी जैसे एकमत से उन्मुख हैं। समस्याओं के हल के संबंध में भी इनके विचार प्रायः समोपवर्ती हैं यद्यपि टेक्नीक में वे थोड़ी-बहुत भिन्नता अवश्य रखते हैं।

दूसरे वर्ग के उपन्यासकार हैं श्रीजैनेन्द्रकुमार, श्रीइलाचंद्र जोशी तथा भगवतीचरण वर्मा आदि। ये यथार्थवादी संप्रदाय के हैं। जीवन का खुली आँखों से देखने की दृष्टि इनमें यथेष्ट मजबूत है।

किंतु विश्व का उपन्यास-साहित्य मनुष्य और समाज के जिस मुक्त विकास की ओर उन्मुख है, उसकी ओर अभी हिन्दी-उपन्यासकारों की दृष्टि गई नहीं। समाज को समन्याय भीषण है, केवल भारत की ही नहीं, मारे संसार की। किंतु राष्ट्रियता का हमारा दृष्टिकोण क्या इसका उत्तर-दायी नहीं? यह आज जो घर-घर में चित्र-हीनता का

विपाक्त वातावरण उपस्थित देख पड़ता है, और क्या गाँव और क्या नगर का आसत व्यक्ति मरभुखी ज्वालाओं, अमतापी नग्नताओं और विपाद, जर्जर-हीनताओं का शिकार हो रहा है। इसका कारण ? क्या इस स्थिति के मूल में हमारी सांस्कृतिक मान्यताओं की अगतिमूलक रुढ़ियाँ और संभर्वा, आधार-हीन तर्क-हीन, अध-परपगाएँ नहीं ? व्यक्ति और जीवन के मूल्यांकन का दृष्टिकोण क्या इतना पुराना और अगतिमूलक नहीं कि आगे विकास का पथ ही अवरुद्ध हो गया हो ? और, क्या हमारा आज का सामाजिक संगठन इसका उत्तरदायी नहीं ?

ये ही वे समस्याएँ हैं, जिन पर आज का उपन्यासकार निरंतर स्थिर दृष्टि रखता चलता है। अतएव अपना एक निश्चित दृष्टिकोण रखने के कारण मुझे हिंदी के उपन्यास बहुत कम पसंद आते हैं। किंतु अपनी व्यक्तिगत रुचि को हिंदी की आसत उपन्यास-प्रेमी जनता पर आरोपित करने का मुझे अधिकार विनया है ?

अब इस उपन्यास की आर दृष्टि टालिए। आशा इसकी प्रशंसनीयता है। जीवन के आदि प्रारंभ में वह कुबेर के साथ पत्नी-रूप में संयुक्त होने-होने लगे हैं। तदनंतर अचानक अपने पर उभा विपाद एक अन्य व्यक्ति के साथ हो जाता है। किंतु शेष जीवन का सुख सामान्य में वह प्राप्त कर नहीं पाती, क्योंकि नीच ही विधवा हो जाती

है। मसुगल में उसे स्थान नहीं मिलता, तभी वह मा के साथ रहने लगती है। जीवन-निर्वाह का कोई उपयुक्त साधन है नहीं। किंगए की अदायगी के लिये माल-असबाब की कुर्की होने की नौबत आ जाती है। मकान-मालिक एक युवक है देवेंद्र। वह आशा की रूप-माधुरी का ग्राहक भी है। उसके जाल से रक्षा करने में सहायक होता है कुवेर। कुवेर विचारशील, सयमी और गभीर प्रकृति का व्यक्ति है। आशा को उसकी मा के साथ वह अपने घर में रख लेता है। सच पूछिए तो उपन्यास का प्रारंभ यही से होता है।

कुवेर का छोटा भाई है सुमेर। वह आशा ने प्रेम करने लगता है। कुवेर विवेकशील है, सुमेर भावुक। वह विवाहित होता है, तो भी आशा की छवि-छटा के आकर्षण से वह मुक्त न होकर उससे और निवद्ध हो जाता है। आशा पहले सुमेर और फिर देवेंद्र की अकशायिनी बनती है। घटना-चक्र से वह और भी एक कामुक व्यक्ति जगदीश के अरु-पाश में आवद्ध होते-होते चबती है। 'आर्थिक हीनता के कारण सुमेर में भी परिवर्तन होते हैं। वामना-विदग्ध जीवन में उत्थित होकर भागकर वह नेता बनता है। उधर आशा भी राष्ट्रकर्मिणी के रूप में रगमच पर आ जाती है। अंत में कुवेर को अनुभव होता है कि आशा निर्दोष है। सुमेर भी बहुत दिनों बाद उसे मिल जाता है। अनुकूल अवसर देखकर कुवेर आशा को सुमेर के हाथ में

देकर स्वयं देश-सेवा का मार्ग प्रदर्शन करता है। और वन, यहाँ उपन्यास समाप्त हो जाता है। उपन्यास का प्रारंभिक भाग उतना मजबूत नहीं, जितना माध्यमिक और अंतिम। किंतु जहाँ तक चरित्रों के पृथक् अस्तित्व का संबंध है, आगा कुबेर, सुमेर, किरण और देवेन्द्र सभी सजीव और सकल हैं। कुबेर आदर्शवादी हैं, सुमेर यथार्थवादी। आगा आदर्शानुसंग यथार्थवादी चरित्र हैं। और इस उपन्यास में जिस चरित्र ने मुझे सबसे अधिक प्रभावित किया, वह आगा ही है।

यदि आगा की सृष्टि के हेतु से देखें, तो यह उपन्यास धार्मिक में एक सुंदर कृति है। विधवा होकर भी वह या व्यक्तियों के जीवन में प्रत्यक्ष रूप से और तीसरे (कुबेर) के जीवन में अप्रत्यक्ष रूप में आती है। किंतु कहीं भी पाठक को समवेदना को नहीं पाती, वरन् उसे और भी दुःख के साथ घाव करने में समर्थ होता है। और, मनुष्य पृथ्वी, तो मुझे यह कहने में जरा भी संकोच नहीं कि उपन्यासकार ने यह एक ऐसा अद्भुत नारी-चरित्र पैदा किया है कि यदि उसका आत्मोपनिषद् और भी कुछ व्यक्तियों में हो जाता, तो भी यह पाठक को महानुभूति की सर्वाधिक अधिकारिणी अवश्य बना रहा नहीं था। बहुत दिन हुए रजियन बलाजार एटन-पेराव भी एक कहानी मैंने पढ़ी थी। नाम था उनका टॉलिंग। भर्षि टॉलिंग ने इन कहानी को विश्व-साहित्य का एक

सुंदर कलाकृति के रूप में स्वीकार किया है। इस उपन्यास को पढ़ते हुए मुझे उसकी याद हो आई। किंतु मेरे कथन का यह अभिप्राय न समझ लिया जाय कि 'कुवेर' की आशा की सृष्टि का मूलाधार वह कहानी है। उस कहानी की स्थितियों से इस आशा की स्थितियाँ सर्वथा भिन्न हैं। सामान्य अथवा अनुकरण नाम की वस्तु मुझे इसमें कहीं देख नहीं पड़ी। इसके सिवा आशा का चित्र उतारने में लेखक के कौशल की प्रशंसा भी हमें करनी ही पड़ेगी।

उपन्यास की दूसरी विशेषता है उसका अतिशय सच्चिमीकरण। गुजराती-उपन्यासकार श्रीरमणलाल देसाई ने इस कला में बहुत सफलता पाई है। इस उपन्यास में भी मुझे उसी शैली की छाप देख पड़ी।

इस प्रकार मैं ध्वनजी को इस उपन्यास की उपर्युक्त सफलता के लिये बधाई देता हूँ। उनमें एक सफल उपन्यासकार होने के द्योष्टि गुण हैं। आशा है, आगे वे इससे भी अधिक सुंदर उपन्यास हमें देते चलेगें।

दारागंज, प्रयाग }
 ८।२।४१ }

भगवतीप्रसाद धाजपेयी

[१]

युवक चुप था ।

माँझी ने कहा—“पार जाना चाहते हो ?”

वतका मुँह खुला—“हाँ ।”

“तो जाओ ।” कहकर माँझी ने डाँढ़ उठा लिए ।

युवक गंभीर भाव से नाव पर चढ़ गया । नाव चलने लगी ।

साध्या के मुट्ठपुटे में भी माँझी ने समझ लिया कि युवक धाव-
बगलता से अधिक चिंतित है ।

डाँढ़ चल रहे थे, सहसा माँझी कुछ गुनगुना उठा ।

“क्या गाना भी जानते हो ?” युवक ने पूछा ।

“नहीं भैया ।” माँझी ने रफ़रफ़ उत्तर दिया ।

“गुनगुना क्यों रहे थे ।”

माँझी चुप ।

युवक भी चुप ।

डाँढ़ चल रहे थे । एकएक माँझी ने पूछा—“कहाँ जाओगे
भैया ?”

“रायपुर ।”

“रायपुर ! क्या मिमरो के नहीं ? ये तो बहुत बड़े सादमी हैं ।
क्या वहाँ के नहीं ?”

“हाँ ।” कहकर युवक ने जवाब दिया ।

“रज मौसमी खादिद ?”

“नहीं ।”

माँझी चुप हो गया। अधिकार बढ़ रहा था। माँझी फिर गुनगुना उठा।

“ज़ोर से गाओ न।” युवक ने कहा।

माँझी ने गाया—

कैसी प्रीति ? कैसा प्यार ?

मिल गए दो तार उर के, हिल गया संसार।

कैसी प्रीति ? कैसा प्यार ?

युवक निस्तब्ध था। माँझी गाता गया—

एक आते, एक जाते,

एक निज बीती सुनाते,

भावना की इस परिधि में

एक सब कुछ छोड़ जाने।

यह विकट वैपश्य कैसा ? यह कुटिल व्यापार ?

कसी प्रीति ? कैसा प्यार ?

तट निकट था। माँझी ने कहा—“अब उतरना होगा।”

“रायपुर कितनी दूर होगा माँझी।”

“दो कोस।”

युवक ने एक साँस ली।

“अँधेरी रात के इस निराले में क्या रायपुर पैदल और अकेले चले जाओगे ?”

“जाना ही पड़ेगा माँझी।” कहकर युवक ने एक साँस ली, और निर्दिष्ट मार्ग की ओर चल पड़ा।

माँझी खड़ा रहा—केवल एक क्षण—फिर पुकारा—“अरे भैया।”

युवक रुका, और लौटा। माँझी ने कहा—“क्या पहुँचा मैं रायपुर तक ?”

युवक चुप रहा । माँझी ने कहा—“चलो, तुम्हें पहुँचा दूँ ।”
 दोनों चल दिए । दोनों ही एक दूसरे से भिन्न थे, किंतु दोनों
 ही का हृदय एक दूसरे को परस्पर समझ रहा था ।
 रायपुर के पास पहुँचकर माँझी रुक गया ।
 “यत्र चलता हूँ ।”
 युवक ने मौन एताजता प्रकट की ।
 “बड़ा जाड़ भैया ।” माँझी ने पूछा ।
 युवक ने बिर तिलावा । माँझी चल दिया ।
 “किंतु खपना नाम तो बता दो भाई ।” युवक ने धूमकर पुकारा ।
 “मुझे ग्युताथ कहते हैं भैया ।” माँझी बोला ।
 युवक खाने के लिये घूमा ।
 माँझी ने पुकारकर कहा—“दौर तुम्हें क्या ” ... ”
 “मुझे कुंघेर कहते हैं माँझी ।”

[२]

आशा घर में बैठी रो रही थी, और बाहर थी दीवानी अदालत के क्लर्क-अमीन और प्यादों की भीड़ ।

अमीन ने कर्कश शब्दों में कहा—“काम शुरू करो । अगर रुपए ही देने का खयाल होता, तो यह दिन ही क्यों देखने को मिलता । चलो, जल्दी करो ।”

आशा की वृद्धा मा ने आजिज़ी से कहा—“क्या कल तक भी नहीं ठहर सकते आप लोग ?”

“यह सब तो आप देवेंद्र बाबू से ही कह सकती हैं । मैं भला क्या कर सकता हूँ ? उन्हीं की खुशामद करो ।” अमीन ने लापरवाही से कहा ।

“तो फिर ठहरिए, मैं उनके पास जाती हूँ ।” वृद्धा ने दीनतापूर्वक कहा ।

वृद्धा अंदर गई । आशा एक ओर बैठी रो रही थी । वृद्धा ने उसके पास जाकर कहा—“अब क्या होगा आशा ? कुबेर तो अब तक नहीं लौटे । क्या देवेंद्र के पास जाऊँ ?”

“तुम पापाप्मा और दुष्ट के पास जाने से क्या होगा मा ।” आशा ने दुखी स्वर कहा ।

“फिर और उपाय ? उन्हीं के आगे गिड़गिड़ाने से ही काम चल सकता है । न-जाने कुबेर कब तक लौटें ?”

घागो भण-भर चुप रही, फिर सड़ी होकर बोली—“तुम बैठो मा, मैं अभी ठीक करती हूँ ।”

आशा और देवेंद्र के घर की ओर चल दी।

पर पहुँचकर उसने कियाड़ों में धड़ा दिया।

“कौन ?”

“मैं हूँ आशा।”

कियाड़ सुल गए। सामने देवेंद्र था। आशा को देखकर उसे आश्चर्य हुआ, किन्तु सुझिराकर बोला—“तुम कैसे आई आशा ? क्या तुम्हें और निकम्मों से भी मिलने की आवश्यकता आ पड़ी ?”

“यह क्या उपाग मचा रखता है तुमने। क्या दो-चार दिन और नहीं ठहरा जा सकता तुमने ?” आशा ने कहा।

“दो-चार दिन में ही कौन-सा धन कटने लगेगा तुम्हारे घर में ?” देवेंद्र हँसते हुए बोला।

“मा ने कबेर दादा का कहीं से खण खाने को भेजा है।”

‘कुबेर’ का नाम सुन देवेंद्र जी में उत्त-भुन गया। बोला—“तो क्या कुबेर ही तुम्हारे खाने निकट हो सकते हैं आशा ! मैं तुम्हारे निकट इतना शिरमूल क्यों हूँ ?”

“खर्च की बात मत करो देवेंद्र ! बोलो, क्या दो रोज का समय और हो सकते हो ?” आशा ने नीचा सिर किए हुए कहा।

“आशा !” देवेंद्र ने और निकट आकर कहा।

आशा चुप रही।

देवेंद्र ने उसका हाथ पकड़ लिया। आशा छिटकर दूर जा पड़ी हुई।

“दो ग में रही देवेंद्र !” आशा ने हाँकते हुए कहा।

“मैं सब कुछ तुम पर न्योतावर कर सकता हूँ आशा ! क्या तुम पर तुम्हारी कुछ भी दवा खि मड़ी हो सकती ?” देवेंद्र ने विनम्र व नाट्य शिष्टाने हुए कहा।

“तुम्हारे जैसे शक्तिशाली और दुष्टाचारों से संघर्ष करने की

अपेक्षा में प्राण दे देना ज्यादा अच्छा समझती हूँ देवेंद्र ।” कहती हुई आशा ने बाहर जाने का उपक्रम किया ।

“ठहरो, तो फिर कुर्क-अमीन को अपना काम पूरा करने दूँ ?” देवेंद्र ने उस पर एक गहरी दृष्टि डालकर कहा ।

आशा चुप रही ।

देवेंद्र कहता गया—“कौड़ी की तीन-तीन होकर फिरोगी, तब क्या अच्छा लगेगा ? तुम्हारी मा, उसका क्या ठीक ? आज मरी, कल दूसरा दिन । फिर तुम्हारा क्या होगा ? कभी मोचा भी है ? मैं—मैं तुम्हें—तुमसे विवाह करके तुम्हें सुखी कर सकता हूँ आशा !”

“सँभलकर बात करो देवेंद्र । मैं विधवा हूँ, इस प्रकार की बातें सुनना भी मेरे लिये पाप है । तुम्हारा जो जी चाहे, करो, मैं जा रही हूँ ।”

आशा चल दी । देवेंद्र चुपचाप मूढ़ा रहा ।



उस दिन कुर्क नहीं हुई । देवेंद्र ने दो दिन की मुहलत दे दी । वह इतनी जल्दी निराश होनेवाला न था ।

[३]

रायपुर एक अछड़ी-गामी छोटी-सी स्त्रियासत थी। वैसे तो ग्रामिणी कुछ अधिक न थी, किंतु पं० रामनाथजी ने अपने मतन उद्योग से उसे कामधेनु बना रखा था। प्रतिवर्ष हजारों रुपय मुट के रूप में आते थे किंतु फिर भी नारी स्त्रियासत उन्हें दीन-प्रतिपालक तथा शरीरपरपर ममकाती थी। उनके व्यवहार का दग ही कुछ ऐसा निराला था कि घर-बाहर सभी लोग उनसे संतुष्ट थे। पुरानी पाल-डाल थी, लेकिन पूरी शान-जौकत के साथ। दरवाजे पर तीन-तीन हाथी नूमते थे, परगु मोंटर गरीबने का कभी प्रश्न ही नहीं उठा। उनके दरवाजे में कभी कोई विमुख नहीं लौटा। उनका विद्याल भवन परिवार के पचीसों व्यक्तियों के लिये आश्रय का स्थान था।

पं० रामनाथ के दो पुत्र थे और एक कन्या। कन्या सबसे बड़ी थी, उसका विवाह कानपुर के पं० रामाधर के एक-मात्र पुत्र रामधन के साथ हुआ। भाग्य-घट में पहचर पं० रामाधर का सर्वस्व स्वाहा हो गया, और दो वर्ष के भीतर ही आर्थिक दुःखों से मरत दिवा-दुग दोनों ही चल दले। श्रीभाग्य-घट पं० रामनाथ का देहाव इस घटना के एक वर्ष पूर्व ही हो चुका था।

पं० रामनाथ के स्वर्णयाम के बाद उनके बड़े पुत्र पं० नरद्वनाथ ने कपों पर सारा ध्यान रखा। वह विविध स्वभाव के व्यापक थे। विद्या में अधिक विद्वान्, सुद्विमान गया अभिज्ञा थे, किंतु

पिता के चरित्र की महत्ता से पूर्णरूपेण वचित थे । उनके व्यवहार में ओछापन था । उनकी इसी कूट-नीति के फल-स्वरूप उनके आश्रित परिवारवाले अपमान न सहन करने के कारण एक-एक करके वहाँ से खिसक गए, यहाँ तक कि पिता की मृत्यु के बाद उन्होंने कभी अपनी दुखी बहन की सुधि भी न ली । उन्हें अपने निर्धन सवधियों से मिलते लज्जा आती थी । बहन से तो उन्होंने पूर्ण विच्छेद ही कर रक्खा था । १० रामनाथ की वह विधवा कन्या ही पूर्व-कथित आशा की माँ है ।

धीरे-धीरे पूरी रियासत में भारी परिवर्तन हो गया । प्राचीन श्रद्धालिका के स्थान पर विशाल महल बनकर तैयार हो गया । हाथी बेच डाले गए, उनके स्थान पर भारी-भारी चार मोटरें प्ररीट ली गईं । गाँव में लेन-देन बंद करके शहर के बैंकों में लाखों के खाते खोल दिए गए । आसदनी खूब बढ़ रही थी, किंतु खर्च कम था, और वह भी खूबसूरती के साथ । अपनी शान-शौकत में लाखों खर्च किए जाते, किंतु बुद्धिमानी के साथ । कहने का तात्पर्य यह कि नरेंद्रनाथ बड़ी अकड़ और आन-थान के आदमी थे । अपनी अकड़ रखने के लिये अपने मने-मने-मने को छाँड़ सकते और उसे दुनिया से नेस्तोनाबूद भी कर सकते थे ।

छोटे भाई महेंद्रनाथ में भाई की-सी विशालता न थी । उनके चरित्र में दृढ़ता का अभाव था । वह भाई के हाथों की कटपुतली थे, और नरेंद्रनाथ की निर्दनीय-से निर्दनीय नीति का विरोध करने की उनमें शक्ति न थी । वह स्वभाव के दब्यू, कजूम और विश्वास न करने योग्य व्यक्ति थे । अपने ऊपर अन्याचार होते हुए भी उसका विरोध न कर सकते थे ।

राजा नरेंद्रनाथ (सरकार उन्हें इस उपाधि में विभूषित

कर चुकी थी) वा दरबार लगा हुआ था। लोग यथास्थान बैठे थे। क्षान्तीकृत में किसी बात की कमी न थी। ऐसे लोगों का भी एक समाज था, जो बड़े शादमियों की चाटुकारिता को ही अपने जीवन का नाकाम्य समझते हैं। बड़े आदमी उन्हें जानते हैं, उनसे बोलते हैं, उनकी गिरनी उड़ाते हैं, उन्हें अपनी धाली की जूझन खाने को डे डेते हैं, घम, यही सब कुछ उनका मौजगाय है। बड़े शादमी चाहे काम पढ़ने पर उन्हें टफा-म्या जवाब दे दें, किन्तु ये मर्दें उनकी जूतियाँ धनवाने के लिये अपने शरीर की खाल प्रस्तुत रखते हैं। धनवान् ही उनके प्रभु हैं, चाहे मांगें, चाहे पिलाएँ, किन्तु ये उपामना में न दिगेंगे।

मौन की मुँहनाल सोंठों ने जगाए राजा नरेंद्रनाथ भ्रामक पुर्खा उड़ा रहे थे कि दरबार ने आकर कहा—“सरकार, कोई मित्रना पाता है।”

एक-भर चुप रहकर नरेंद्रनाथ ने कहा—“उल्लासो।”

दरबार खला गया। नरेंद्रनाथ ने मुग्धाकृति और गंभीर कर ली। थोड़ी देर में दरबार के नाथ कुंभर ने आकर उनका अभिवादन किया।

“कहिण्, क्या आता है।” नरेंद्रनाथ ने थोड़े ही-थोड़े पूछा।

“मैं कानपुर से आ रहा हूँ।” कुंभर ने कहा।

“हूँ।” काबू नरेंद्रनाथ चुप हो गए।

कुंभर भी चुप।

तो मैं कैसे कोट्टे पाय सेवा हूँ? यही सब सोच कुंभर से है न?” नरेंद्रनाथ ने पूछा।

कुंभर की थोड़ी मांति मिली। उन्होंने प्रणाम होकर कहा—“जी हाँ, इस समय कापसी बरत कीज जाया हुआ मकद में है, यद्यपि हमारे कुंभर कापसी मकद में सेवा में है।”

नरेंद्रनाथ कुछ गभीर होकर चुप हो गए। कुवेर उनके मुँह की ओर देखते रहे।

क्षण-भर चुप रहकर नरेंद्रनाथ ने कहा—“क्या सकट है? कुछ रुपया चाहिए क्या?”

“जी—जी हाँ। इस समय उन्हें यदि कुछ धन की सहायता न मिली, तो उनका सर्वनाश हो जायगा। इसीलिये उन्होंने मुझे श्रीमान् के पास भेजा है।” कुवेर ने कह डाला।

“हूँ।” कहकर नरेंद्रनाथ चुप हो गए।

कुवेर कहते गए—“आशा और उमकी मा पर ऐसी विपत्ति आ पड़ी है कि यदि दो-तीन दिन में आर्थिक सहायता न मिली, तो उन्हें दर-दर की ठोकरें खानी पड़ेंगी।”

“आप उनके सब्धी हैं?” नरेंद्रनाथ ने पूछा।

“जी नहीं, मैं तो उनके पड़ोस में रहता हूँ। उन्होंने आपके नाम एक पत्र भी दिया है।” कहते हुए कुवेर ने जेब से एक पत्र निकालकर उनके सामने रख दिया।

नरेंद्रनाथ ने लापरवाही से पत्र उठाकर आधोपात पढ़ा, फिर बोले—“अच्छा, अब आराम करें, रात को फिर मुक्तसे भेंट होगी।” (नौकर से) “नरायण! आपको आराम के साथ ठहराओ, और ग्याने पीने की व्यवस्था करो।”

कुवेर नरायण के साथ चले गए। नरेंद्रनाथ घटे-भर तक चुप बैठे सोचते रहे, फिर उठकर अंदर चले गए।

कुवेर नहा-बोकर भोजन करने के बाद चारपाई पर लेटकर आराम करने लगे। उनके हृदय में पूर्ण आशा घर कर गई थी कि आशा की विपत्ति दूर होगी, किंतु उन्हें इस देर का क्षण-क्षण भारी मानस पड़ रहा था। उन्होंने सोचा, अपने घटे आदमी, और पहन इस घुरी अवस्था में! इतना

खो नौकर - धाकर ले जाते होंगे । अजय दुनिया की हालत है ।

नाम के घत्रंग कुपेर दटे । नौकर ने कहा—“जन-पान लाख ?”

“नहीं भाई, कुछ दृष्टा नहीं ।” कुपेर ने शैगड़ाई लेते हुए कहा ।

“देविण, कोई तकलीफ न उठाइएगा, नहीं तो मालिक मुझ पर बहुत नाराज़ होंगे ।” नौकर ने हाथ जोड़कर कहा ।

“नहीं भाई, कोई तकलीफ नहीं । मालिक तो प्राराम कर रहे होंगे ? कै घने भेंट लागी ?” कुपेर ने पूछा ।

“मालिक ! कौन ? घटे या छोटे ?” नौकर ने पूछा ।

“घटे ।”

“घटे, यह तो राज शोपहर की गादी में कलकत्ते चने गए । आपकी नहीं मालूम ?” नौकर ने मार्चप पूछा ।

“घने गए ? क्या लौटेंगे ?” कुपेर ने स्तंभित होकर पूछा ।

“सजी, उनका क्या ठीक । यह राजा है, जब मीज में होगी, लौटेंगे । फिर महीने-दो महीने से पहले तो लौटने भी नहीं ।” नौकर ने उत्तर दिया ।

कुपेर गल होकर चुप रहे । नौकर चला गया ।

कुपेर सोचने लगे, क्या घटे राज-मियों को यही सम्यता है ? हाँ । यदि महायता नहीं करना था, तो मात्र फट देने । याह रे जमाने ! राज के साथ यह क्या ? खोर... विमुक्तयद खरने छोटे भाई ने कुछ कह गए हो । ठीक, ऐसा कभी नहीं हो सकता । जहाँ छोटे भाई पर रूप देने के लिये कह गए होंगे । दूसरी छोटी-सी बात के लिये क्या इतना कर रहे हैं ? हाँ, तो अब हमसे ही मित्रता चाहिए ।

कुपेर नटकर बाहर गए । दुर्दि हृदय में एक विचित्र प्रसार

की दलमान थी। बाहर नौकर से उन्होंने कहा—“ज़रा छोटे सरकार से मिलना है।”

“बहुत अच्छा।” कहकर नौकर चला गया।

थोड़ी देर में नौकर आकर उन्हें महेंद्रनाथ के पास ले गया।

वह चारपाई पर लेटे थे, कुंघेर को देखकर, उठकर बैठ गए। मुस्कराकर बोले—“आइए।”

कुंघेर सामने की कुर्सी पर बैठ गए। “अजी, इधर आइए। आप तो तफल्लुक करते हैं।” कहते हुए महेंद्रनाथ ने उन्हें खींचकर पलंग पर धिटा लिया।

“कहिण, यहाँ कुछ बप्ट तो नहीं है आपको? अरे बुधुआ, पान तो ले आ।” कहते हुए महेंद्रनाथ ने अट्टट आत्मीयता प्रकट की।

चल-भर घुप रहकर कुंघेर ने कहा—“क्या बड़े सरकार कलकत्ते चले गए?”

“जी हाँ, इधर बहुत दिनों से कहीं घूमने-घामने नहीं निकले थे, अतएव आज टोपहर की गाड़ी से कलकत्ते चले गए। वहाँ से पुरी चले जायेंगे।” महेंद्रनाथ बोले।

थोड़ी देर तक कुंघेर चुप रहे, फिर बोले—“मेरे विषय में तो आपसे अवश्य कुछ कह गए होंगे?”

“आपके विषय में? नहीं तो, मुझसे कुछ नहीं कह गए।” महेंद्रनाथ ने शाश्चर्य की मुद्रा दिखलाते हुए कहा।

कुंघेर क घटा लगा। महेंद्रनाथ उनके मुँह की ओर देखते हुए बोले—“क्या बात थी? क्या कुछ उन्हें आपसे कहना था?”

“वही, नौ बानपुर से पत्र लाया था, उसी के संवध में उन्होंने आज रात का जवाब देने के लिये कहा था।” कुंघेर ने दृष्टे-से हृदय में कहा।

“शत्रुदा, वह दीदीवाला पत्र। पर मुझसे यह कुछ नहीं कह-
गए।” महेंद्रनाथ ने धीरे से कहा।

दो मिनट तक कुबेर भी मौन रहे और महेंद्रनाथ भी। अंत में
धीरे से कुबेर ने कहा—“तो क्या आप अपनी बहन की कुछ
मजदू नहीं कर सकते? यह इस समय बड़े कष्ट में हैं। कुल
चार-पाँच सौ रुपये की यात तो है ही। आपके लिये इतना रुपया
क्या बीता है?”

एक भर चुप रहकर महेंद्रनाथ बोले—“किंतु बिना भाई साहब
की आज्ञा के कुछ कर सकता बहुत कठिन है।”

साहब करके कुबेर ने कहा—“किंतु यह आपकी भी तो बहन हैं।”
हो-हो-हो करके महेंद्रनाथ बोले—“सो तो ठीक है, किंतु यह
क्या भाई साहब ही करते हैं। यह लौटकर आ जायें, तो आपका
काम हो सकता है।”

यात वाटकर कुबेर ने कहा—“किंतु उनका तो राज और कल के
बीच में सर्वनाश हो जाएगा। फिर यदि सहायता मिल भी गई,
तो उनमें क्या होगा?”

महेंद्रनाथ ने फिर कुछ नहीं कहा। कुबेर को महेंद्रनाथ से भी
बढ़कर महेंद्रनाथ पर पूजा हुई।

पीछी पैर में कुबेर उठ गये हुए, और बोले—“शत्रुदा, तो
आज्ञा लीजिए, चलाता हूँ।”

“साहूकार? शत्रुदा। वैदिक, लावरी मोटर पर नर्तक-गट नक
पहुँचा दिया है।” महेंद्रनाथ ने उठते हुए कहा।

“कल कल की कोई लावरी-गट नहीं। जैसे लावा, धा, जैसे ही
कल चलेगा।”

ही-ही करते महेंद्रनाथ चुप हो गए। कुबेर बाहर चले।
महेंद्रनाथ तो उनके पीछे पीछे बाहर गढ़ आए।

८ “अच्छा, चलता हूँ।” कहकर कुवेर चल दिए।

चलते-चलते कुवेर के हृदय में एक बार फिर दोनो भाइयों के प्रति घोर घृणा उत्पन्न हुई। किंतु उस बेचारे को नहीं मालूम कि यह भी बड़े आदमियों के दरबार की एक लीला-मात्र है।



कुवेर पैदल नदी-तट पर पहुँचे। उन्हें मालूम ही नहीं पड़ा कि कब रास्ता तय हो गया। वह ध्यान-मग्न थे, महसा उन्हें सुनाई दिया—

‘मैंनी प्रीति’ ? कैसा प्यार ?

मिल गए दो तार उर के, हिल गया ससार।



कुवेर ने आवाज़ दी—“रघुनाथ !”

माँझी ने स्वर पहचाना। ऊँची आवाज़ से बोला—“आता हूँ कुवेर दादा।”

कुवेर नौका पर सवार हो गए। माँझी ने डौड़ चलाना प्रारंभ किया। कुछ देर मौन रहकर कुवेर ने कहा—“गा रहे थे ? गाओ न ?”

माँझी ने गाया—

एक आते, एक जाते,

एक निज नीनी सुनाते ;

भानना की इस परिधि में

एक सर कूट छोड़ जाते।

यह किछ वषम्य कैसा ? यह निहुर व्यापार ?

‘मैंनी प्राति’ ! कैसा प्यार ?

कुवेर मौन थे। माँझी ने कहा—“क्या काम नहीं हुआ भैया ?”

कुघेर ने तिर हिला दिया ।

माँकी चुप ।

कुघेर चुप ।

एक-भर बाद माँकी ने पूछा—“क्या बड़ी विपत्ति में हो भैया ?”

कुघेर चुप रहा ।

माँकी फिर बोला—“क्या अपना समझकर मुझे भी अपने दुःख में शामिल कर सकते हो ?”

कुघेर का हृदय भरा हुआ था । उसने सब कुछ माँकी के सामने उल्लेख कर रख दिया ।

माँकी ने एक मिनट लेकर कहा—“ऐसा ही जमाना है भैया ।
पूछो, भाई और यान क्या गौर है ।”

कुघेर चुप ।

माँकी चुप ।

माँकी ने बहुत कुछ सोच विचार के बाद कहा—“बहुत थक हो,
रात भी हो गयी है, आज मेरी कुटिया को परिग्र करो कुघेर दादा ।
सबसे पहले पार पहुँचा दूँगा ।”

कुघेर धरा धीरे झूमा था । चुप रह गया । माँकी ने अपनी
कुटिया की ओर नौका धुमा दी ।

कुघेर मौन देहा रहा ।

[४]

कुंघेर के न आने से आशा को आशा से अधिक निराशा हुई। हृथर देवेंद्र आकृत किए हुए था। वह कई बार आशा के पास आया, और अपना मंत्र फूँकने की चेष्टा की, किंतु बुरी तरह झिड़किपाँ खाकर लौटा। लेकिन वह साधारण रूप से पीछा छोड़ने-वाला न था। उसे पूर्ण रूप से आशा थी कि आशा उसके रूप नहीं चुका सकती, और उसे एक दिन मेरी हाना पड़ेगा। उसे क्या मालूम था कि आशा उससे मिलने की अपेक्षा मृत्यु को अधिक पसंद करती है।

संध्या को उसने किरण के पास जाकर कहा—“क्यों दीदी, कुंघेर दादा अभी तक नहीं आए?”

किरण भीतर-ही-भीतर कुंघी हुई थी, किंतु ऊपर से प्रसन्नता दिखलानी हुई बोली—“हाँ, आए तो नहीं। तुम्हारा काम ठहरा, भला, बिना स्वयं किए आ सकते हैं।”

आशा सब कुछ समझती थी। वह किरण के हृदय का हाल जानती थी, अतएव एक क्षिपी हुई श्वास लेकर रह गई। वह जाने ही वाली थी कि सामने से सुनेर ने आकर किरण से कहा—“भाभी, कुंघेर दादा तो मानो जाकर वहीं बठ गए।”

आशा ठिठककर खड़ी हो गई।

किरण ने मुँह बनाकर कहा—“अब भाई, मैं क्या उनकी ठेकेदार हूँ। पूछना हो, तो आशा रानी से पूछो।”

सुनेर ने मुस्कराकर आशा की ओर देखा। आशा जजाकर चल दी।

सुमेर गढ़ा रह गया ।

किरण ने चढ़चढ़ाना प्रारंभ किया—“जिस-तिस के झगड़े में पड़ते फिरते हैं । श्री-पचास की नौकरी लगी हुई है, सो इन्हीं कमों में तो चढ़ेगी । छापना पेट भरकर दूसरों के पेट की तरफ देगा जाता है । वृद्धो भला !”

सुमेर ने मुस्किराकर कहा—“तुम टाँटती भी तो नहीं हो भाभी दन्तों । गुगारा काम छोड़कर दूसरों का काम करने फिरते हैं । एक लम्बी-सी टाँट बना दो न एक दिन । मैं तुम्हारी तरफ रहूँगा भाभी !”

मुँह धिचकार कर किरण बोली—“तुम सब एक-से हो । न-जाने जहाँ-जहाँ में घातर बसे हैं हम मुहल्ले में लोग । देश का सुरदा और नानामऊ का दाद ।”

सुमेर चला गया, दिगु सीधे ही लौटकर बोला—“धरे ! देगो भाभी, आग के दरवाजे पर कितनी भीड़भाड़ इकट्ठी है । मातून पड़ना है, कुछ देवेंद्र आज फिर कुर्की छिपी लेकर पहुँच गया । अब क्या होगा भाभी ? भैया तो पाए नहीं ।”

किरण कीर्तु निवृत्ती पर साढ़े । उसने देखा, देवेंद्र भीड़भाड़ किए आशा के दरवाजे पर दटा हुआ है । दगला जो धड़कने लगा ।

देवेंद्र गरज रहा था—“न, अब कुछ न सुना जायगा । या तो दरवाजा तो, नहीं तो आज मेरे आगमो न लीटने । मज्जा मज्जा लिये है । गीन बार लौट गया है, अब न लीटगा ।”

उठा कीर्तु बहा रही थी । आग दीवार, तिरत दे पान पृथ-
“व रोने लगी ।

सुमेर ने उसे भीरन दिगने हुए कहा—“बचाने ही दाद नहीं

आशा ! तुम लोग हमारे घर चली आओ, ले जाने दो दुष्ट को, जो कुछ ले जाना चाहे ।”

आशा ने सहानुभूति-भरे नेत्रों से सुमेर की ओर देखा । सुमेर ने आँखें नीची कर लीं, और बाहर चला गया ।

सामान बाहर निकाला जा रहा था, वृद्धा आँसू बहाती हुई एक ओर खड़ी देख रही थी ।

देवेंद्र ने कहना शुरू किया—“आप ही लोग बतलाइए कि आगिर इसमें मेरा क्या कुसूर । पृथ्वि, मकान में रहेंगे, और वरमों वस्त्रों का किराया भी न देंगे । आगिर कहाँ तक रका जा सकता है ? मैं तो सब कुछ करने को तैयार हूँ, पर . . .”

“आप बहुत ठीक कह रहे हैं, लेकिन अब उन सब बातों की जरूरत नहीं ।” कुवेर ने देवेंद्र के सामने खड़े होते हुए कहा ।

अपने सामने एकाएक कुवेर को देखकर देवेंद्र एकदम सहम-सा गया, किंतु शीघ्र ही संभलकर बोला—“मुझे तो रुपया . . .”

बात काटकर कुवेर ने कहा—“हाँ, तुम रुपया ही लो । बोलो, कितना हिमाय है ? जल्दी करो, मुझे फुरमत नहीं ।”

कुवेर ने रुपए चुका दिए ।

देवेंद्र की आशाओं पर पानी फिर गया, वह चुपचाप रुपए लेकर चला गया ।

वृद्धा ने गद्गद होकर कुवेर की पीठ पर हाथ फेरा, और कहा—“तुम बड़े भले लड़के हो बेटा । वहाँ तो सब कुशल से हैं न, मेरे नरेंद्र और महेंद्र ?”

कुवेर ने धुल-भर चुप रहकर कहा—“सब ठीक है । कोई चिंता की बात नहीं ।”

आशा ने आकर पूछा—“कितने रुपए दिए, मानाजी ने आपको कुवेर दादा ?”

कुबेर मुस्बिराएँ, और बोले—“एक नाव ग्ययो मे भरकर दी थी, किन्तु यह नदी की खाई में डूब गई।”

“तुम तो हँसी करने का आदमी।” शाजा ने मुँह बनाकर कहा।

कुबेर ने सारी कथा कह दी। दोनों खामोश रह गये।

“किन्तु तुमने जेबे की खोज कहीं से न कर दी?” बुढ़ा ने माग्नचर्य पूछा।

“यह भी एक निर्धन और बुढ़ा माँकी की जेब-भर की कमाई।” कुबेर ने एक निश्वास लेकर कहा।

“

”

“

अपने घर में निकलने के बाद शाजा और उसकी माँ को वहीं और रहने का ठौर न था, यमराज कुबेर उनके अपने घर ले आया।

शिरा ने कुबेर को लयी पट्टवार पतलाई—“यादिर यह सब संदेश अपने विर पर क्यों पाल लिया? बुद्धिवा चार दिन की मोमान है, उसकी जमान-जमान विधवा बेटी को दोन अपने मित्र छोड़ेगा? गुमारी तो लागे यह है।”

कुबेर ने कहा—“तो फिर यादिर ये लोग कहाँ जायें? उन्हें भी तो नहीं दिखाना चाहिए?”

“तो हमने जमान-भर का टेका नहीं लिया है। जहाँ पुत्रों हों, वहाँ जायें। मैं तो जाये गये देवी हूँ, तुम्हें चार जने ही पुत्र लगे।” शिरा ने घेंटने हुए कहा।

“हाँ, यह करना भी नहीं। जब उनके घर ले आया हूँ, तो जिनाया भी रहेगा। गुमारी क्या ले लेंगी? जमान क्या करे, बात सोचिये माँ बेटी, और नहीं रहेगी।” कुबेर ने उन्हें समझाने का प्रयत्न करते हुए कहा।

“तुम लोग तो सबेरे ही जमान समझने नहीं हम लोगों को तो

सब भुगतना पड़ता है। नहीं मानोगे, तो एक दिन पड़ताना पड़ेगा।” किरण ने उदास होकर कहा।

कुवेर उठकर बाहर चले गए। किरण पैर पटककर घर के काम में जुट गई।



कुवेर उच्च कुत्तीन ब्राह्मण थे, और थे साधारण श्रेणी के आदमी। एक स्थानीय दफ्तर में १०० मासिक पाते थे। पूर्वजों ने संपत्ति के नाते वही मकान छोड़ा था, जिसमें वह रहते थे।

कुटुंब में केवल उनकी स्त्री और छोटे भाई सुमेर को छोड़कर और कोई न था। सुमेर की अवस्था इस समय बीस वर्ष की थी, और वह बी० ए० का छात्र था। देखने में सुंदर, अच्छे स्वभाव का और भाई का आज्ञाकारी था।

कुवेर मनोविज्ञान के विद्यार्थी थे। उनका अधिकांश समय पुस्तकें पढ़ने और दूसरों की सहायता करने में व्यतीत होता था। मनो-विज्ञान का विद्यार्थी साधारणतया दुलमुल स्वभाव का होता है, और यही दशा कुवेर की भी थी। वह कोलाहल से दूर रहते और प्रत्येक बात को साधारण महत्त्व के साथ देखने के आदी थे। उनमें सक्रियता का अभाव था, और यही कारण था कि वह असफल जीवन व्यतीत करने में पड़ गये। किरण उन्हें प्रत्येक बात के लिये जताड़ती, किंतु उनके स्वभाव में वह इंच-भर भी परिवर्तन न ला सकी। वह सबकी शिकायतें सुनते, उनके महत्त्व से अलग होते और बाड़ में उन्हें हँसकर उड़ा देते। वह समार की कुछ यड़ी समस्याओं की ओर झुटना चाहते थे, किंतु दो बातें उनके मार्ग में बाध थीं। एक तो नीकरी और दूसरी उनकी अकर्मण्यता।

किरण चावल राँध रही थी, और पास बैठी हुई आशा भिल

पर नयाजा पीस रही थी, इसी समय कुंवर ने आकर कहा—“कुछ खिलाओ, तो एक गुलाबवरी सुना दूँ।”

किरण ने मुँह टेढ़ा करके कहा—“रहने दो अपनी गुलाबवरी, अपना काम करो जाकर, मुझे सुनने की फुरमत नहीं।”

‘तो रहने दो। खो, मैं यह चला।’ कहते हुए कुंवर जाने लगे।

“क्या बात है। कुंवर दादा ! ज़रा बताओ तो।” आशा ने नीचा मिर किए हुए कहा।

“जब रिबी को सुनना ही नहीं, तो मैं क्यों अपना मिर लगाऊँ।” कुंवर ने बननियों से किरण की लक्ष्य करते हुए कहा।

“ज्यादा बसो नहीं, बताते बसो नहीं, क्या बात है ?” किरण ने पट्टे में काटी घुमाते हुए कहा।

“बयादा सुनो, मुँह का बिगड़ तब हो रहा है।” कुंवर ने फट दावा।

किरण पीछे से बाहर धा गई। कुंवर ने कहा—“लाओ अब मिठाई।”

“हँसी-नाकाल छोड़ो, और बताओ कौन है ? यहाँ से बाप है ? क्या दोगे ?” किरण ने एक साथ हाने प्रश्न कर दाले।

“बड़े शास्त्री हैं, दूध से छाण हैं, लेकिन दोगे-अंगे कुछ नहीं।” कुंवर ने उंगे लिपों की मोसल से कहा।

‘ये ही बातें तो मुन्गी कुंवेर बयान नहीं करती। ऐसे जल्दी बस में तुम्हें मज़ाक सुनना है।’ किरण बिनाकर दोबरी।

“कह, मुन्गी ही बाप ने बीबी की आगदर से नाम लिख दी है। जो हर बगल पर फैलाती हो।” कुंवर ने कहा।

बातों निरत रही। इसी दोबरी से ही बाप पर लक्ष्य बट लगे होने से बचकर बिना कुंवर से न हो गया था। कुंवर ज़्यादा से बिना

करना चाहता था, किंतु कुवेर के पिता राजा होते हुए भी अधिक रुपया चाहते थे। आशा के पिता की उस समय आर्थिक स्थिति ज्यादा अच्छी न थी, अतएव विवाह न हो सका। कुवेर और आशा, दोनों ही के दिल टूट गए। थोड़े दिन बाद कुवेर का भी विवाह हो गया, और आशा का भी। कुवेर ने किरण को लेकर सतोष किया, किंतु आशा के भाग्य शीघ्र ही फूट गए। ये पुरानी स्मृतियाँ आज एकाएक आशा के हृदय में जाग्रत हो उठीं।

“तुम आशा के मामा को तो जानती ही हो। वही, जिनके यहाँ मैं कुछ नाम पूर्व आशा के लिये रुपए माँगने गया था। उन्हीं की लड़की है।”

“अरे, रजो !” आशा के मुँह से निकला।

“हाँ, राजा नरेंद्रनाथ की लड़की। उन्हीं के छोटे भाई तो बाहर बैटक में बेटे हैं।”

“ना बाबा, मैं उनके यहाँ अपने सुमेर का विवाह न करूँगी। जो जगत् अपनी बहन भाजी का नहीं हुआ, वह किम्का हो सकता है ?” किरण ने चण-भर विचारकर कहा।

“नहीं भाभी, लड़की बड़ी अच्छी है। तुम चूको मत सुमेर दादा की अच्छी जोड़ी रहेगी।” आशा ने कहा।

“अरे कुवेरचंदजी, क्या करने लगे अदर ?” कहते हुए गिवनदन पुरोहित अदर आ गए।

“आइए, देखिए, इन्हें न-जाने क्या हुआ है, जो भाँजी मार रही हैं।” कुवेर ने हँसते हुए कहा।

“अरे देटी, मैंने बड़ी मुश्किलों से विवाह तय किया है। राजा हैं वे लोग, राजा ! और दो भाइयों के बीच में यही तो एक मतान है। सुमेर तो राजा होगा, राजा।” पुरोहितजी ने किरण का लक्ष्य करके कहा।

किरण गंगा के नाम से विधल गई । बोली—“हमें कुछ इनकार
थोड़े ही हैं । लेकिन सुना है, आदमी अच्छे नहीं हैं ।”

“अरी पागल, आदमी लोगों में अच्छे हैं । घर भर जायगा
पैसा । कृष्णद, आधो, बली ।”

पुंगुहिजी कुंवर का लेकर बाहर चले गए ।

[५]

सुमेर का विवाह ठीक हो गया । चलते समय महेंद्रनाथ ने कुबेर को १०००) भेंट किए । कुबेर ने छुपचाप रूप में लेकर अदर भेज दिए ।

चलते समय महेंद्रनाथ ने कहा—“मुझे याद आता है, मैंने कहीं आपको पहले भी कभी देखा है ।”

“देखा होगा ।” कहकर कुबेर ज़रा मुस्करा दिए ।

महेंद्रनाथ उनका मुँह देखते रह गए । जाते समय आशा ने भी छिपकर अपने मामा के दर्शन कर लिए ।

महेंद्रनाथ लौट गए ।

शाम को आशा नाश्ते की तश्तरी लेकर सुमेर के कमरे में गई । सुमेर कॉलेज से अभी लौटा था ।

आशा ने तश्तरी मेज़ पर रखते हुए कहा—“आज तो मिठाईं खिजाओ सुमेर दादा ।”

“कैसी मिठाईं आशा ?” सुमेर ने उसकी ओर मुस्कराकर कहा ।

आशा झप गई । उसके चेहरे पर पसीना आ गया । वह जाने लगी ।

“चुनो आशा ।” सुमेर ने पुकारा ।

आशा स्की नीचा मिर किए हुए । कहने को तो वह कह गई थी, किंतु हृदय उसे अधिक बात फरते हुए लज्जा आ रही थी ।

“बताओ, क्या हुआ ?” सुमेर ने उसके और निकट आकर कहा ।

आशा घुप । उसके पसीना आ रहा था, और लज्जा से उसके

गाल गाल हो रहे थे । मुंघेर ने कमरे में अपूर्व मौंदर्य देखा, और पहली ही बार ।

“क्या सोचो न ?” कहकर मुंघेर ने कमरे का एक हाथ पकड़ा ।

शान्ता हाथ छुड़ाकर परवाजों के पास आ गई, और बोली—
“आपका विवाह सब ठीक है न ?”

और वह भाग गई ।

मुंघेर स्तब्ध पड़ा रहा । इस घटना ने उसे ऐसा बना दिया कि वह अपना विवाह भी भूल गया ।

“आशा होगी सुंदर है ?” किन्तु छि ! क्या मुझे ऐसी बात सोचना चाहिये । मेवारी विधवा है और दुखी । किन्तु आज महमा उसे ही कहा गया । आज अचानक ऐसी घटना हो क्यों गई । मैं उसका जीवन सब न होने दूंगा । उसे मतझाऊंगा, और उसे पर-अष्ट न होने दूंगा । मैं तो

विराजाना ने कमरे के परवाजों पर गढ़े होकर कहा—“नामी आपकी बुला रही हैं ।” और वह भाग गई ।

मुंघेर ने फिर एक बार उसे देखा, और अनुमान लगाया कि शान्ता अवरुध भीतर-ही-भीतर उससे प्रेम करती है । उसने उसे हर चीज से हटाने का एक निश्चय किया । वह नरमी पर बैठकर सोचने लगा ।

और, शान्ता कातर में पूर्ण सु दुर्ग थी । वह किसी के भी घर की गोपनीयता देने योग्य थी, किन्तु भाग्य ने उसका साथ न दिया ।

कमरे की अलमारी में वह कुछ शान्ता पत्रों पर लेखन सोचने लगी, वहां रहते रहते वह करने लगी थी “क्या मेरा कोई लाला ही है ?” किन्तु मुझे और न बना जाना चाहिये था । मैं भगवान् ! वह शान्ता ही नहीं है, वह भी भगवान् ही है । मैंने उसे नष्ट किया । मैंने उसे नष्ट कर दिया है । मैंने उसे नष्ट कर दिया है ।

आशा रो दी । बाहर से किसी ने किवाड़ खटखटाए । “यह भी क्या सोने का वस्तु है । चल, तेरी भाभी तुझे बुला रही है ।” आशा की मा बोली ।

आशा बाहर निकलकर आँगन में आ गई । सामने किरण बैठी सुमेर को तंग कर रही थी । आज न-जाने क्यों आशा को सुमेर के आगे आने में लज्जा-सी मालूम पड़ने लगी ।

“देखो आशा ! अब यह मिठाई खिलाने में कन्नी काट रहे हैं ।” किरण ने हँसकर कहा ।

आशा की लज्जा थोड़ी दूर हुई । बोली—“मिठाई क्यों नहीं खिला देते, सुमेर दादा ?”

सुमेर ने मुस्किराकर कहा—“अच्छी आकृत है भाई । सभी मेरे खिलाफ़ मिलकर एक हो गए हैं । जाओ, मैं विवाह नहीं करता ।”

“मगर बातों से काम न चलेगा । मिठाई न खिलाओगे, तो कान पेटे जायेंगे ।” किरण ने थोड़ा दबाकर कहा ।

“यह खूब रही । रुपए उठाकर आपने रख लिए, और मिठाई मैं खिलाऊँ । ऐसे बूढ़े शिकारपुर में बसते होंगे ।” सुमेर ने उत्तर दिया ।

“अच्छा, अभी से ससुराल के माल पर नीयत गढ़ने लगी । ‘सूत न कपाम्, कोरियों में लट्ठम लट्ठा ।’” किरण ने ज़रा मुँह बनाकर कहा ।

“क्या है भाई, उसे क्यों तंग कर रही हो ?” कहते हुए कुवेर ने प्रवेश किया ।

सुमेर कंपकर बाहर भाग गया ।

कुवेर ने किरण को आड़े हाथों लेते हुए कहा—“तंग करने लगी न लड़के को । इनना सीधा-माटा है, इमीलिये बना

रही हो। राजा हो जायगा, नय धान करने की भी हिम्मत न पड़ेगी।”

“योग-योग, यड़े लाट साधव ये यशे। डेरने ही भर के तुम दोनों भोले हो, धर न-जाने कैसे-कैसे गुन भरे हैं। राजा हो चाहें थोड़े मराव मेरा क्या रिगाड़ लेगा। गुन लगता है, तो न बोलेंगी।” कहकर विरग ने मुँह फुला लिया।

“आ गहं न थपती आदम पर। पहले हेंगोमी, महाऊ करोमी, और बाद म मुँह फुला लोमी। मैं तो गुमने तंग आ गया हूँ।” कुपेर ने कहा।

“तो गुम भी न दूसरा बियाह कर लो। दौमले क्यों रह्यो।” विरग ने फूले हुए मुँह से कहा।

“बिगदनी हो, तो मैं खला। आशा, इस धान तो बिलाना।” कहकर कुपेर उठकर गये हो गए।

विरग मुँह फुलाकर एक सोर चली गई।

कुपेर ने धान लेते हुए आशा से कहा—“तुम्हें तो सुमेर के बियाह में थोड़ा पतझड़ नहीं है आशा।”

आशा का आस सज्जा में पुन टाल भा। उसने गाड़ काल हो गए। करने की संभालकर बोली—“मुझे क्या प्यारा हो मारगा है कुपेर दारदा।”

आशा खली गई। कुपेर ने कुछ सोचकर पर लड़कानी बिहराया था।

धोना देर बाद विरग ने आकर कहा—“तो कद का बियाह भी कर रहे हो।”

“आदर पै नही पड़ी।” कहकर कुपेर हँस दिए।

‘सबका जानी, नय सगायो, कय कभी न पूछेंगी।’ कहकर विरग ने भी हँस ली।

“तुम तो नाराज़ हो जाती हो। अच्छा सुनो, आज से विवाह के पचीस-छब्बीस दिन हैं। अभी पुरोहितजी ने बतलाया है। आज वह उन्हें चिट्ठी लिख रहे हैं।” कुवेर ने कहा।

“तब तो जल्दी तैयारी करनी चाहिए। तुम तो हर काम में ढील डालने के आदी हो। भगवान् जाने, नाक रहेगी या कटेगी।” किरण बोली।

“सब हो जायगा। तुम तो घबरा उठती हो वही जल्दी। मेरा काम मिनटों में होता है।” कुवेर ने हँसकर कहा।

“होता है। बड़े काम करनेवाले।” किरण बोली।

“अच्छा, देख लेना। वह ठाठ रहेगा कि लोग देखते रह जायँगे। हाथी, घोड़े, ऊँट, सभी तो रहेंगे। आगे-आगे हाथी पर चढ़कर तुम्हें चलना पड़ेगा। बोलो, राज़ी हो न?” कुवेर ने हँसते हुए कहा।

“तुम्हें बातें बहुत बनाना आती हैं। हर बात मज़ाक में उड़ा देना खूब सीखा है। चलो रहने दो।” किरण विगड़कर बोली।

“अच्छा, लाशो, भोजन तो दो। कोरी बातों से तो पेट भरेगा नहीं।”



एकान्त में आशा को पाकर सुमेर ने कहा—“उस दिन कुछ बुरा तो नहीं मान गई आशा?”

आशा जाने लगी। सुमेर ने उम्मे रोककर कहा—“बात क्यों नहीं करती, क्या कुछ नाराज़ हो?”

“मुझे जाने दीजिए। मैं क्यों नाराज़ होने लगी।” कहकर आशा चली।

सुमेर ने उमका हाथ पकड़ लिया, और बोला—“इस तरह भागने से काम न चजेगा। मुझे तुमसे कुछ बातें करना हैं।”

आजा मारे जर्म के पानी-पानी हुई जा रही थी। उसके दोनों गौर-वर्ण कपोल लाज हो रहे थे। मुमेर उसमें कुछ और कहने आया था, किन्तु कुछ और कहने जा रहा था।

"कटिप, क्या कहना है ?" आजा ने धीरे से कहा।

मुमेर चुप था। उसकी जयान बंद हुई जा रही थी। उसने बंदे मल में कहा—"आशा।"

"क्या ?" आशा बोली।

मुमेर चुप।

आजा गल दी। वह चपराहे हुई-सी पभीने में लथपथ। उसका हृदय द्रुत जा रहा था। वह जामर चाम्पाई पर लेट गई, और सोने लगी। उसने सोचा—यह मेरी रक्षा का कोई उपाय नहीं दिखता। मैं इस घर के द्विजे शत्रु भी बनकर जाई हूँ। क्या कुमेर आजा के उपकारों का बदला इसी प्रकार चुकाना होगा। फिर क्या कहें ? क्या वहीं पत्नी जाऊँ ? नहीं और भी तो नहीं। यदि उनका प्रियाग नष्ट होने परवा सही, तो जयान हो सयगा। मुमेर ! मुम क्या कर रहे हैं। मेरे हृदय में मुमेर प्रति चट्ट धर, चट्ट प्रेम है, किन्तु मैं मुने, मुमेर और कुमेर आजा व घर की नष्ट रचना नहीं चाहता। है नगर, पलातो !

वह धीरे धीरे रही। उसका आरा गरिमा अविश्वो में गीता हो रहा था।

उपर मुमेर कुमों पर बैठा प्यार लगा था। उसने सोचा, मैं आजा-आजा होम में क्या करूँ। मिन रह हूँ। आजा विधवा है, उसे प्यार की रीत में साथ में लेना सर्वमान्य हो जायगा। वह तो लम्बी स भी, उसे आजा के प्यार हो गया है ? वह मेरी और आजा दोनों के हृदय में, यह कि उस नहीं भावि सा हुआ है कि मल विराट होम जा रहा है। किन्तु आजा हमसे इच्छा की जाने लगा था कि मुमेर

मार्ग गलत है आशा । किंतु कुछ कह भी तो न सका । शायद उसे कोरा उत्तर सुनने में कष्ट हो । किंतु फिर क्या किया जाय । मेरा और उसका मिलना ही अनुचित है । मैं अवश्य उससे स्पष्ट बात कहूँगा । अच्छा हो, यदि मैं ही कुछ दिनों के लिये कहीं चला जाऊँ ।

बहुत कुछ सोच-समझकर सुमेर ने भाई से कहा — “कुछ दिनों के लिये बाहर चला जाऊँ दादा । कल से कॉलेज भी गर्मियों की छुट्टी के लिये बंद हो रहा है ।”

कुवेर ने चण-भर चुप रहकर कहा — “अब तो विवाह के मोलह ही रोज रह गए हैं । कैसे जा सकोगे ?”

“मैं आठ-दस रोज़ में लौट आऊँगा । ज़रा तबियत बहाल जायगी ।” सुमेर नीचा सिर किए हुए बोला ।

“जैसी तुम्हारी मर्जी । मगर लौट आना जल्दी । मैं अकेला ही हूँ ।” कुवेर ने कहा ।

सुमेर ने जाने की तैयारी कर दी । जाने से थोड़ी देर पूर्व वह आशा को देखने के लिये कुछ उद्विग्नता अनुभव करने लगा । आशा ने समझा, वह मुझसे रुठ होकर जा रहे हैं । कहीं ऐसा न हो, वह विवाह के समय तक न लौटें ।

उसने भी सुमेर से मिलना निश्चित किया । सुमेर के कमरे में पहुँचकर उसने कहा — “आप बाहर जा रहे हैं ?”

“हाँ ।”

“क्यों ?”

“थोड़ी, ज़रा तबियत बहालाने ।”

“तो क्या यहाँ तबियत नहीं लगती आपकी ?” — आशा ने दोनों से जीभ दबाकर कह डाला ।

सुमेर चुप रहा । आशा ने फिर कहा — “किंतु विवाह के समय क्या आपका इस प्रकार जाना अच्छा लगता है ?”

सहसा सुमेर के मुँह से निकल गया—“मजबूरी।”

आजा के चोट लगी। मैंने इन्ते निराश किया है, इसीलिये शायद जा रहे हैं। जब शायद विवाह पर नहीं लौटेंगे। उसने सोचा।

सुमेर चुप बैठा रहा। न-जाने क्यों आजा को देखने ही उसका हृदय कँसा हो जाता था।

आशा ने कहा—“मैं आपसे प्रार्थना करती हूँ, आप बाहर न जायें।”

सुमेर उठकर आशा के निकट आया। आशा हँसी नहीं। सुमेर ने आशा का हाथ पकड़कर कहा—“मेरा चला जाना ही ठीक है आजा।”

आजा के शरीर में बिजली की दौड़ गई, उसने हाथ मुझाते हुए कहा—“हाँ ठीक है। आपका चला जाना ही सही है।”

सुमेर को इस उत्तर की आजा न थी। वह चुप हो गया। आजा थोड़ी देर तक खड़ी रही, फिर चल दी।

दरवाजे के पास पहुँचने-पहुँचने उसने कहा—“विवाह के पाले ही लौटेंगे न ?”

“हाँ।” बतकर सुमेर चुप हो गया।

आजा एक निश्वास लेकर चली गई।

उसी दिन रात की गार्डी से सुमेर आराम चला गया।

[६]

सुमेर का विवाह हो गया । राजा महेन्द्रनाथ ने मय कुछ दिया — धन, वैभव और ज़मींदारी भी । कुबेर बड़े आदमी हो गए । उन्होंने नौकरी से इस्तीफा दे दिया । उन्हें ज़मींदारी सँभालने के लिये काफी समय चाहिए था । फिर लाखों रुपया पाम हो जाने की वजह से कुबेर को नौकरी करना एक भार-सा जान पड़ने लगा ।

किंतु रज्जो ? वह साधारण स्त्री न थी । शान-गुमान, रोब-दाव और अभिमान उसमें राजा नरेंद्रनाथ से कम न था । सारे घर ने उसक स्वागत के लिये आँखें दिछाईं, किंतु रज्जो ने इसे घृणामद समझकर पैरों-तले रौंद डाला । वह अपने को सबसे ऊँचा और सम्मानित समझती थी । आशा को तो उसने पहचाना भी नहीं । आशा उसे बहन समझती थी, किंतु रज्जो ने उसे एक चाटुकारिता का अंग समझा । वह बड़े आदमी की बेटी थी, और फिर राजा नरेंद्रनाथ की ।

कई दिन रात को ज़रा देर में आने पर उमने पति को आड़े हाथों लिया—‘ इतनी देर तक बाहर रहने की क्या ज़रूरत ? मैं क्या कोई नौकर हूँ, जो आधी रात तक जागती रहूँ ?’

सुमेर जरा उद्धत स्वभाव का था, उमने जवाब दिया—“तो कौन तुमसे जागने को कहता है । तुम शाम से ही सो जाया करो । मैं तो जब फुरसत पाऊँगा, तभी आऊँगा ।”

“तो कौन-सी कमाई किया करते हो, जो फुरसत नहीं मिलती ।

भारा कभी दिखावाओ तो कि क्या कमाई करके लाए हो ?" रजो ने सुदसी लेते हुए कहा ।

सुमेर ऐसी बातों का चाटी न था । उसने कहा—“किङ्काल चाते करना मुझे नहीं आता । ज़रा कम ध्यान करने का अभ्यास करो ।”

रजो का पारा चढ़ा—“तो क्या किसी की ज़वान बट कर दोगे ?”

“हाँ, कम-से-कम तुम्हारी तो बद करना ही पड़ेगी ।” सुमेर ने झौंझू उधार दिया ।

बात यही तक रह गई । रजो तिलमिलाकर तड़ी, और पल्लंग पर जा गयी । सुमेर नीचे पहुँचा आंगन के लिये ।

जीट में आशा थी । उसने खाना सुमेर के आगे रख दिया । सुमेर का आग बहुत दिन बाद आगा से इस प्रकार झकते मिलने का अपमर मिला था ।

राते राते सुमेर ने आग की और दृष्टि गढ़ाते हुए कहा—“कुछ दुपल्लों हुईं भावून पदवी हो आग ?”

आगा ने अज्ञा से मुँह नीला कर लिया ।

“क्या करने लगी धाँसी ?” आगा ने थोड़ी देर बाद कहा ।

“जादू में गई ।” सुमेर की भाँति तन गई ।

आगा चुप रह गई । उसने समझ लिया कि आज कुछ सिगाय बरख हुआ है ।

सुमेर आग पर चढ़ गया । आशा न रजो के दरवाजे के पास जाकर कहा—“आग का जो दाहा ।”

रजो ने निरे-जी-लेटे उधार दिया—“मे नहीं मारुँगी ।”

आगा दबे और मीट जाई ।

अगले सुमेर ने सुमेर का दाँटा—“ज्या नदू बहुत के साथ इस आग का रस्ता आग आदि सुमेर । बहुत मुँह धान है ।”

सुमेर सुनकर उठकर आग गया ।

किंतु धीरे-धीरे रज्जो ने सारे घर में कलह शुरू कर दी। कुवेर को छोड़कर और सारा घर उससे परेशान था। सुमेर को यह बात धीरे-धीरे असह्य होती जा रही थी।

एक दिन वह किरण से उलझ गई। यों तो किरण बहुत चिढ़-चिढ़े स्वभाव की थी, किंतु रज्जो का स्वभाव देखकर उसने ज्यादा बोलना-चालना बंद कर दिया।

किरण ने उसे आवाज़ दी—“बहू ! खाना खा जाओ।”

रज्जो कमरे से चिल्लाकर बोली—“मुझे तो खाना खाने में अभी घटा-भर है। तुम्हें तकलीफ होती हो, तो चौका उठा दो।”

किरण उसके पास पहुँचकर बोली—“इस तरह की बातें तुम्हें न करनी चाहिए बहू। यदि तुम राजा की लड़की हो, तो हम लोग कोइं कुँजड़े-क्याड़ी नहीं हैं।”

रज्जो ठबल पड़ी—“तो मेरे राजा की लड़की होने से सारे घर को जलन क्यों है ! मैं चली जाऊँ, तो टढ़क पड़े। हाय राम, मेरा सो इस घर से जी ऊँच उठा है। कहीं आकर फँस गई।”

किरण फिर बोली नहीं। कुवेर ने सुना, किंतु चुप रहे। वह रज्जो को अभी नासमझ समझ रहे थे। वह उसकी प्रत्येक बात को स्नेह की दृष्टि से देखते। वह समझ रहे थे कि बड़े घर की बेटी है, मिज़ाज बिगड़ा हुआ है, आगे चलकर संभल जायगा।

एक दिन रज्जो को लेकर सुमेर ने सिनेमा जाने की तैयारी की। सुमेर ने कुछ सोच-मसमकर कहा—“भाभी और आशा को भी साथ ले लो।”

रज्जो मुँह बनाकर बोली—“ले न लो। मैं क्या मना करती हूँ। और, कौन तुम मेरी बात मान लो, जो अपनी जयान ढालूँ।”

“धीर, तुम्हारी हर एक बात मानने की मुझे ज़रूरत भी नहीं।” कातं हुए तमेर ने आवाज़ दी—“धरे भाभी, धो भाभी।”

रगो लज-मुन गई । घोड़ी ढेर में किरण थाई ।

“चलो, गुर्मी बिनेमा दिवा लाऊँ, आशा को भी साथ ले लो ।”
मुमेर ने कपड़े पहनते हुए कहा ।

“ना बाबा, अब मैं भला क्या बिनेमा देखूंगी ? तुन्हीं लोग
देख आओ । गुर्मी हो, गो आशा को लेते जाओ । उन पंचारी को
बप बिनेमा देखने को मिलता है ।” किरण ने कहा ।

“चलो न भाभी, बड़ा अच्छा क्रिस्म है । आशा को भी ले चलो ।
मुमेर वाला ।

“नहीं भाई, अभी मुझे चून्टे प आगे निकना है ।” कहकर
किरण वाली गई ।

“आजा को भेज दो ।” मुमेर ने चिल्लाकर कहा ।

“भाई न सुँद थी ।” रज्जों ने जवाब ।

मुमेर चुप रहा । घोड़ी ढेर में आशा थाई ।

गर्दे पहनकर लज्जी में आ जाओ । बिनेमा चलेंगे ।” मुमेर
ने कहा ।

“मुझे रहने दो मुमेर दादा । मैं जाकर क्या कहूँगी ।” आजा ने
मीठा भिर किए हुए कहा ।

‘इन्तुम मत छोड़ो, लज्जी में बदले पहनकर आ जाओ ।” मुमेर
ने कहा ।

आजा घोड़ी ढेर तक खड़ी रही, फिर चली गई ।

कपड़े पहनकर रज्जों और मुमेर साहब आए । हाँस में आशा
दर दर मैरे हो खड़ी थी ।

‘बदले नहीं पहने लगी लज्जी । भई माह !” मुमेर ने मज्जा
कर कहा ।

आजा आया नहीं । हाँस ने चून्टे में पैरु लपटाए हुए खोई
आ मे आजा दा ... लज्जी क्यों नहीं लाती ?”

आशा धीरे से कमरे की ओर गई। सुमेर ने कहा—“भाभी, ज़रा ठंडा पानी पिला दो।”

किरण ने आँखें तुरेर कर रज्जो की ओर देखा, और गिलास में पानी भरकर ले आई।

थोड़ी देर में आशा सकुंद धोती पहनकर आ गई। सुमेर ने कनखियो से उसकी ओर देखा। साधारण-सी श्वेत धोती के अदर भी आशा सुमेर को तदकीले-भदकीले कपड़े पहने हुए रज्जो से अधिक सुंदर जैसी।

तीनों चल दिए।



‘अधखिला फूल’-फिल्म चल रहा था। तीनों आरचेस्ट्रा क्लास में बैठ गए। सुमेर, रज्जो और उसके बाद आशा बैठी।

कहानी की नायिका एक युवती विधवा थी। नायक नरेंद्र उसके प्रेम में पड़कर सब कुछ छोड़ चुका था—माता, पिता और विवाहिता स्त्री।

सुमेर ने कई बार आशा की ओर देखकर मन ही-मन में गहरी निश्वास ली।

नायक कह रहा था—“करुणा, मैं अब बहुत दूर आ गया हूँ, जहाँ से पीछे हटना मेरे लिये आसान नहीं। मैं जिस स्रोत में यह चुका हूँ, उसकी कल्पना तुम कर सकती हो।”

विधवा करुणा का मुँह लाल हो गया था। आवेश में आकर नरेंद्र ने उसका हाथ पकड़ लिया।

सहसा सुमेर का हाथ पीछे कुर्सी की ओर गया। आशा कुर्सी की पीठ पर अपना हाथ रखते हुए नायिका के चरित्र से अपनी तुलना कर रही थी। सुमेर का हाथ उसके हाथ पर पड़ा। वह भिन्नकी, किंतु हाथ हटाया नहीं। सुमेर उसके हाथ पर अपना हाथ रखते स्वर्गीय सूर उठा रहा था।

थोड़ी देर बाद आशा ने अपना हाथ निमकाया, किन्तु सुमेर ने उसे अपने हाथ में दबा लिया, और दबाए रखा यही देर तक—जब तक 'इंटरवेल' न हुआ।

आशा लम्बा से गप्पी जा रही थी। उसने सोचा, मैंने यहाँ आकर खरछा नहीं दिया। ऐसे ट्रिलम क्या मेरे देखने योग्य हैं।

ट्रिलम और आशा, दोनों ही ने सुमेर की मुक्त प्रवृत्तियाँ जामत कर दी थीं। रोशनी होने पर सुमेर उठकर बाहर चला गया।

रजो ने मनमंज होकर कहा—“बड़ा अच्छा ट्रिलम है। कल्याण की ऐक्टिंग तो बहुत नु कर है।”

आशा ने धीरे से कहा — ‘हाँ, लेकिन मेरी समझ में तो आयर नहीं हुई।’

रजो हँस पड़ा। वह समझी, नैजान आशा ऐक्टिंग क्या जाने।

जब फिर शुरू हो गया। आशा कुरसी पर बैठकर बैठ गई, और आशने दोनों हाथ नीचे रख लिए। सुमेर ट्रिलम न देखकर बार बार आशा के हाथ का पान कमगियों के पर रहा था। आशा की जमा और मजा, वह मना नहीं थी कि जहाँ ट्रिलम समाप्त हो।

ट्रिलम समाप्त हुआ, और तीनों घर आए। रामने - भर रजो ट्रिलम के मजा में पीरा गिरली करती रही, किन्तु जब सुमेर ने ट्रिलम देखा तो, वह न तो वह जो जान रहा वेदव आशा की हो जैसा रहा था।

राम भा सुमेर का मौन नहीं चाह। उसने सोचा, क्या काल का ही वह स्वाभाविक हुआ है मुझे जानुस ट्रिलों में क्या खाली हो जे जाना चाहिये था। अब तो इस मार्ग में जाना मेरे लिए बहुत मुश्किल है। खाली वह क्या दाव ? और जो मारा होता है। मेरी भावने जिद करत निजना ले गया। यि. खाली रजो देर लेनी, तो है मारा घर बहल था बैठ हो जाना

और आशा बेचारी का कहीं ठिकाना न लगता । रज्जो साधारण स्त्री नहीं ।

उधर आशा ने सोचा, मैं ही सर्वनाश की जड़ हूँ । मेरी-जैसी स्त्री को क्या कभी भूलकर इस ओर पैर रखना चाहिए ? 'अगर रज्जो को मालूम हो गया, तो फिर क्या दशा होगी ! तो फिर मैं क्या करूँ ? कहाँ चली जाऊँ ? अच्छा, यदि उनमें खोलकर कह दूँ, तो ? यही सबसे उत्तम मार्ग है । हाय ! मेरा रूप और यौवन ही इस घर का नाश करेगा, और कुवेर दादा ! नहीं, मैं उन्हें विपत्ति में नहीं डालना चाहती । मुझे काला मुँह करके कहीं चला जाना चाहिए । किंतु ठीर कहाँ ? और हृदय ? हाय, न-जाने क्यों उनसे अलग होने का जी नहीं चाहता । उनका वह हाथ कितना कोमल और सुखकर था ! किंतु छि ।

आशा को रात-भर नींद नहीं आई । सुबेरे उसे सुमेर को अपनी शक्ल तक दिखलाने में लज्जा आ रही थी, और सुमेर भी अपने को आशा की दृष्टि से बचाना चाहता था ।

उस दिन से सुमेर कुछ अनमना-सा रहने लगा । रज्जो की ओर से उसका चित्त हटता जा रहा था । यदि रज्जो चतुर तथा सुघड़ पत्नी होती, तो सुमेर और आशा, दोनों ही का कल्याण हो सकता था । सुमेर का मन जैसे-जैसे रज्जो की ओर से हटता जाता था, वैसे-ही-वैसे वह आशा की ओर और निचना जा रहा था । उसने रज्जो से मन लगाने की बड़ी चेष्टा की, किंतु अभिमानी और धन-कुवेर राजा नरेंद्रनाथ की लड़की भज्जा किमी को क्या समझती थी । सुमेर उसके मनोभावों का समझता था, और यही कारण था कि रज्जो के प्रति उसके हृदय में घृणा चढ़ती जा रही थी । धीमे-धीरे उसका स्वभाव विद्रुचिदा हो चला था, और रज्जो से उसकी रोज ही झड़प हो जाया करती थी ।

कुपेर सब कुछ जानने हुए भी चुप थे। उन्हें विन्यास था कि यज्ञ पाकर सब कुछ ठीक हो जायगा।

एक दिन रजो की स्थिति में साधारण-सी भड़प हो गई। उसने उस रात गाना नहीं गाया।

रात को सुमेर ने उससे कहा—“तुमने गाना क्यों नहीं गाया? तुम्हारी ये आदतें मुझे पसंद नहीं।”

“नहीं पसंद है, ता मैं क्या करूँ? मैं गार्ड-न गार्ड कोउ इसका देहदार हूँ?” रजो ने लेटे-ही-लेटे कहा।

सुमेर का दिमाग कुछ जड़ा हुआ था, उसने जोर से कहा—“दाग भी क्या नहीं आता? ये सबूत पछी की।”

रजो का पारा पलटता बढ़ गया। बोली—“क्या कहा? माती! तुम्हारी हतती हिममत।”

सुमेर क झिंके भी समझ था। उसने उत्तेजित होकर कहा—“धरदार! तो अब मुँह चुना, तो शरणा न होना।”

रजो हृदय सुमेर के सामने का खड़ी हुई, और जोर से शिखा-कर बोली—“तुन बता समझने तो कि मैं तुमने उर जार्डगी। राजा परदेनाम की लक्ष्मी किसी में दरेपानी नहीं।”

“मैंने सब दिया, अपने काबज में रहो। राधा की लक्ष्मी हो, तो क्या? मैं तो तुम्हें अपने देगे की सुनी के बराबर समझता हूँ।” सुमेर ने मूढ़के में अवरुध कहा।

“भूती भीर छोड़ दोगी। मुँह भी भगा। तुम्हारे-जैसे मौर,।”

और जब सब-कुछ बने सुमेर ने उसके मुँह पर थपड़ दे दी—“हमनामारी, कागती पछी गाना है। अब जो कुछ कहा, तो इसी मोहरर सब हुआ।” सुमेर ने हँसने हुए कहा।

रजो ने शिखाकर सा-मान निरुधर कहा निरुधर—“मैंने उर दाप

छोड़ा है, इसका मज़ा देख लेना। बाबूजी का अपमान किया है। जेलखाने जाना पड़ेगा, जेलखाने . . . ”

सुमेर ने झटकर उसके बाल पकड़ लिए, और ज़मीन पर पटककर लातों से मरम्मत शुरू कर दी। रज्जो के चिल्लाने की आवाज़ पास-पड़ोस तक सुनाई देने लगी। कुचेर और किरण ने पहुँचकर उसे छुड़ाया।

“हरामज़ादी, अपने को लाट साहब की बखी समझती है। हठियाँ पीसकर रख दूँगा, उल्लू की पट्टी।” सुमेर ने दाँत पीसते हुए कहा।

रज्जो चुपचाप एक ओर खड़ी हुई थी, उसे स्वप्न में भी सुमेर से इस प्रकार की आशा न थी।

कुचेर ने लाल-लाल आँखें करके कहा — “हैवान मत बनो सुमेर। तुम्हें स्त्री पर हाथ उठाते हुए लज्जा आनी चाहिए थी। चलो बेटी, मेरे साथ चलो।”

कुचेर रज्जो को माथना देकर नीचे चले आए। उन्हें सुमेर के इस व्यवहार पर क्रोध तथा आश्चर्य हो रहा था।

आशा और किरण भी अपने कमरों में लौट गئے। आशा ने कहा — “सुमेर दादा का यह काम बहुत बुरा रहा भानी।”

जीभ टनाकर किरण ने कहा — “मुँहजोरी करेंगी, तो मार नहीं खाएँगी। औरत ज्ञात और इतनी बड़ी ज़यान ! आसमान तिर पर ठठा रक्खा है।”

आशा चुप हो रही।

इसका नतीजा यह हुआ कि चौथे दिन महेंद्रनाथ आफ़र रज्जो को ज़िया ले गए। रज्जो जाते समय किसी से बोली तक नहीं।

केवल कुचेर की आँखों में दो आँसू दिखाई दिए।

एक सप्ताह बाद कुंभर को राजा नरेंद्रनाथ का एक पत्र मिला, जिसमें उन्होंने लिखा था—“अब जीवन-भर राजा आपके घर नहीं आ सकते। लड़की पर हाथ बलाकर मेरा अपमान किया गया है। अब आप सभी उसे चुलाने का साहस न करें, यदि सुमेर में बुद्धि हो, तो वह पत्नी शीघ्र से आकर रह सकती है।”

कुंभर को पत्र पढ़कर बड़ा क्रोध हुआ। किन्तु उन्होंने किसी से कहा कुछ नहीं। उन्हें सुमेर की इस मादानी पर गह-गहरा दुःख होता था।

कुंभर ने कान पर हाथ रख लिए। कई मामलें खोजीं तो जाने पर किसी ने कुंभर से कहा—“अब क्या राजा को चुनौती दे दी नहीं?”

कुंभर ने गुस्सिलकर कहा—“कुंभर की मदारी को क्या पिटवाने से जिसे चुनौती है?”

“तो क्या मां बाप से ही घर न जिद्दी पाए देगी? मैं तो ऐसी सीखें करवा जिद्दी में बहुत काम देखी हैं। गले माझिक हैं, पगि हैं, सभी नजर हो दिखा, तो क्या?” किसी ने कहा।

“तो अपना गीत भी गलत कर सकती हैं।” कुंभर ने हँसते हुए कहा।

“क्या? क्या ही ऐसा काम देखें, गलत है?” किसी ने प्रश्न पूछा।

“किन्तु वह तो अपने मजिद से जावनी। अपने पिता से सभी निज दिया था मुझे।” कुंभर ने तैयार होकर कहा।

“छद्मकी व सारा सारा की बुद्धि ही जाने गई है ...”

किरण की बात पूरी भी न हुई थी कि तारवाले चपरासी ने आवाज़ दी ।

कुवेर ने तार खोलकर पढ़ा—“नरेंद्रनाथ की कल रात को मृत्यु हो गई है । जल्द आइए ।—महेंद्रनाथ ।”

कुवेर धक्क-से रह गए । किरण और आशा को भी सुनकर दुःख हुआ । थोड़ी देर मौन रहने के बाद कुवेर ने कहा—“तो अब हम लोगों को वहाँ अवश्य जाना चाहिए ।”

“ज़रूर, रियामत की बात ठहरी, न-जाने कौन-सी चाल खेल दी जाय । तुम और सुमेर दोनों जाओ ।” किरण ने बुद्धिमानी दिखाते हुए कहा ।

कुवेर क्षण-भर चुप रहे, फिर बोले—“खैर, जायदाद की क्या बात है, जिसे चाहे मिले, किंतु मनुष्यता के नाते भी हम लोगों को जाना चाहिए । अच्छा, सुमेर को आने दो ।”

सुमेर ने घर आकर समाचार सुना, और कुछ बोला नहीं ।

कुवेर ने उसे बुलाकर कहा—“चलो, सवेरे की गाड़ी से हम लोग रायपुर चलें । तैयारी कर लो ।”

“मैं नहीं जाऊँगा ।” सुमेर ने दृढ़ता प्रकट करते हुए कहा ।

“क्यों ?” कुवेर ने मान्द्वय पूछा ।

“मैं उनसे कोई संबंध नहीं रखना चाहता ।” उसने जवाब दिया ।

“यह तुम्हारी नादानी है ।” कुवेर ने ग़ात भाव से कहा ।

“जो कुछ भी हो । इस विषय में आप मुझे समझा करें ।” कहकर सुमेर चला गया ।

कुवेर चुप रहे । किरण ने पूछा—“तो फिर क्या चलने का हगदा है ?”

‘आज ही रात की गाड़ी से । चलो, तैयार हो जाओ ।’ कुवेर ने मोच-विचारकर कहा ।

"क्या मैं भी जाऊँ ?" किरण ने पूछा ।

"सबका ।" बाबूजी कुमेर उठ खड़े हुए ।

'बिनु आशा"

"उम्मे यहीं छोड़ देना होगा ।" कुमेर ने आशा दी ।

किंतु आशा यह सुनकर बहुत परेशान हुई । और कहीं जाने की बात होती, तो आशा कभी न रहती किंतु रायपुर में उसके लिये स्थान न था ।

जाते समय किरण ने आशा की माँ को घर का भार सौंप दिया ।
बूढ़ा ने कहा—“जल्दी लौटना पड़ेगी । अब अधिक समय यह शरीर नहीं चल सकता ।”

सीता ही लौटेंगी चाची ! जरा कुमेर को समय से भोजन मिलाने का प्रबंध कर देना ।” कहती हुई किरण जाने की तैयारी में लग गई ।

उसी दिन रात को कुमेर फिर एक बार लेकर रायपुर चले गए ।

सड़ो-गट पर पहुँचकर उन्होंने माँझी की गलान की ।

'या रहा हूँ भैया ।' माँझी ने दूर से आवाज़ दी ।

कुमेर ने बिना बोझ लाया कि यह गली हमारा पुराना माँझी है, जिसने आशा के लिये बहुत दूर दूर दौड़ के खंगून में खपाया था ।

"तो आज हमसे कुछ दे बचो नहीं देने, पैसारा गरीब माँझी है ।" किरण ने कहा ।

माँझी बोला । कुमेर को देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ । बोला—

"कपड़े हो भैया ?"

"हाँ, सब हैं । जरा दूर पहुँचाना होगा ।"

"क्या फिर रायपुर लाओगे, उधर जान ?" फिर कुछ माँझी का आवाज़ कानों में गूँजने लगा ।
"हाँ, सब हैं । जरा दूर पहुँचाना होगा ।" माँझी ने खुशी से जवाब दिया ।

कुवेर हँस दिए । नाव चल दी । रास्ते में माँझी ने कहा—
“आशा अच्छी है ?”

“हाँ ।” कुवेर बोले ।

थोड़ी देर में सोच-समझकर ५०० रुपये के नोटों का पुलिंदा निकालकर कुवेर ने माँझी के हाथों पर धर दिया, और कहा—“ये हैं तुम्हारे रघुनाथ ।”

माँझी की प्रसन्नता लुप्त हो गई । सच-भर चुप रहकर और एक हलकी-सी निश्वास लेकर उसने कहा—“अब बड़े आदमी हो गए मालूम पड़ते हो, कुवेर भैया ।”

“नहीं, रघुनाथ ! मैं पहले ही-मा एक साधारण आदमी हूँ । पास में थे, इसी से दे दिया ।” कुवेर ने खिसियाए-से होकर कहा ।

माँझी ने फिर बात नहीं की । किनारे पहुँचकर कुवेर ने उसके हाथ पर पाँच रुपये निकालकर रख दिए ।

माँझी ने फिर निश्वास ली, और कहा—“समय के फेर में पड़कर आदमी कितना बदल जाता है, कुवेर भैया ! यह आज मुझे मालूम हुआ । तुम वास्तव में कुवेर हो गए हो भैया । अच्छा, घुरा न मानना । भगवान् करे, फलो-फूलो ।”

इतना कहते हुए माँझी ने एक साँस ली, और चल दिया ।

आज उस दिन की आरम्भियता का अभाव माँझी को स्पष्ट रहा था ।

कुवेर निरुत्तर होकर खड़े रहे । माँझी ने घूमकर देखा भी नहीं ।

ॐ

ॐ

ॐ

अब सुमेर और आशा एक दूसरे के अधिक निकट थे, किंतु दोनों में बातचीत बिजकुल बंद थी । सुमेर भी कम बोलने की चेष्टा करता था, और आशा भी दूर-दूर रहती थी । किंतु दूर-दूर रहने पर भी उनके

हृदयों में अब अधिक पीड़ा थी। आशा की लज्जा दिन-पर-दिन बढ़ती जाती और अब उसे सुमेर के सामने जाने से भी लज्जा आती थी। यह जिनका भागने की चेष्टा करता था, उतना ही उसका मन कियों की ध्येय में रहता था।

सुमेर का घर और बाहर, कहीं भी मन न लगता था। कई बार तो उसने जल-मुनरर रज्जों को ही इसका दोषी ठहराया। उसने ही अपनी लज्जा से आग और धी को एक साथ मिलाने का प्रयत्न दिया है। सोचते सोचते सुमेर को उस पर प्रोध आया। कितने दिन ही गण, क्या एक पत्र भी नहीं लिखा जा सकता था? फिर भुगते न जन्म नर। हाय! कुवेर दादा ने भी मुझे कर्षा पार्श्व दिया। एक भावना का गृहस्थ की पत्नी से विवाह करके क्या न सुखी न ही खराब था? और आता! सुन्हीं क्यों अपना गर्वमान करने के लिये मैंने हृदय-दहन पर छा गई। अब नहीं सहन हो सकता। कष्ट तक मृदु में यह धोका लिए हुए जीवन रहे। न, अब मुझमें यह न हो पायेगा। आशा...

यह कहकर आसपास पर बैठ गया। आशी मन जा सुखी थी। यह उदर हीरे आता। दुःख पर आशा के कर्मों को और घना, किन्तु जन्मता भीतर से पड़ था।

आशा यह कर्मों को छान घंटा काय सोचती थी।

सुमेर छोटी देर तक छान कर फिर देर बढ़ा रहा। उसने सोचा, आशा को नहीं सोचा। दि। लौटो।

यह सोचता। तो क्या पता था, आशा भी दुःखी विचार आता में आशी बदन रही है। उसने सोचा, अब यह घर यह सब महान ही देखता। सुमेर! तुम्हें क्यों मैंने जानने आकर मेरी आति, मेरी शिरदरा और मेरी धीने का महान मह कर दिया। मेरा यह कहना है। कुवेर दादा क्या कहेंगे, और मदरे बढ़का यह दुःखान्ता

देवेंद्र ! उसे तो बड़ी प्रसन्नता होगी । किंतु सुमेर, सुमेर ! सुमेर ।

उसे दरवाज़ा हिलता-सा जान पड़ा । वह उठी, दरवाज़ा खोलकर बाहर आई । ज़रा ठिठकी, फिर चुपचाप सुमेर के कमरे की ओर जाने के लिये सीढ़ी पर चढ़ी । उसका हृदय धड़क रहा था, किंतु पैर सुमेर के कमरे की ओर बढ़ रहे थे ।

दरवाज़े के पास पहुँचकर उसने किवाड़ पर हाथ रक्खा । दरवाज़ा भीतर से बंद था ।

सुमेर किवाड़ बंद किए हुए, पलंग पर लेटा हुआ आँसुओं से सज्जिया भिगो रहा था ।

आशा चुपचाप लौट गई ।

दूसरे दिन सबेरे सुमेर ने आशा से कहा—“आज मैं एक काम से बाहर जा रहा हूँ । रात को लौटूँगा । मेरी रास्ता मत देखना ।”

आशा ने नीचा सिर किए हुए कहा—“रात को भोजन तो कीजिएगा ?”

“अच्छा, कर लूँगा !” कहकर सुमेर चल दिया ।

“क्या बात है बेटी ?” उसकी मा ने पूछा ।

“कुछ नहीं । आज वह खाना नहीं खाएँगे ।” कहकर आशा चुप हो रही ।

आज उससे भी दिन को भोजन नहीं किया गया । दिन-भर अकेली, उसका मन इधर-उधर भटकता रहा । शाम को वह मन बहलाने के लिये सुमेर के कमरे में जा बैठी । उसने पुराने चित्रों को धातमारी से निकालकर देखना प्रारंभ किया ।

अल्यम में सुमेर के दर्जनों चित्र थे । आशा जो भरकर उन्हें देखने लगी । सुमेर का एक चित्र हाल का ही सींचा हुआ था । आशा ने उसे निकाल लिया, और बाकी चित्रों को उटाकर धर दिया ।

वह एक थोड़ा पर लेटकर उस चित्र को बार-बार देखने लगी।
उसे मालूम था कि शायद सुमेर देर में चारुंगे।

जेन्टे-ही लटे चागा को मचकी जा गइं, और वह चित्र को सीने पर
रक्की ही रक्की सो गइं।

वह स्वप्न में भी सुमेर को देख रही थी कि किसी कामल स्वर्ण में
उसकी शॉन गुल गइं।

सुमेर उग्रता हाथ अपने हाथ में लिए हुए उसके मरगार पर
हाथ फेर रहा था।

चागा भड़भड़ाकर उठ घंठी।

"लेटी रहो, चागा!" सुमेर ने उसे फिर लिटाते हुए कहा।

"मुझे जाने दीजिए। मैं ... मैं .. आपका कमरा बद करने
चाहूँ थी, रिशु. किन्तु. . .।"

सुमेर तैयार बोला—"तो फिर चित्र सुराकर हृदय के ऊपर
रखने की क्या जरूरत थी? चागा! जब हम एक दूसरे से अलग
मरी रह गये। मैं तुम्हें हृदय से जानता हूँ।"

आप दोनो हाथों से मुँह पिपाकर रोने लगी। सुमेर ने उसे
कोलकर गोद में लिटा लिया, और बोला—"बोली, क्या सम्मुख मुम
भी देख करती हो?"

"जबने की सुमेर ने मुक्त करके चागा यादने की कुरसी पर बैठ
गइं, और बोली—"रिशु आप हम प्रहार मेरा मर्यताम न करें। मैं
बही की थी म रहूँगी। और, आप. . . आप भी मुझे जेवर सुखी
म होइते।"

सुमेर ने उसे कोलकर अपने कोल पुष्पा लिटा—"हम दोनों
को यादने याद स्पर्श है। हम अब एक दूसरे से जलना होकर नहीं
रह सके। बोली, क्या तुम आजीवन मेरा या यादने देना हो?"

चागा ने अपने को सुमेर की सीर में पिना लिटा, और बोली-

“मैं अभागिनी हूँ, तुम देवता हो। क्या मुझे दासी बनाकर भी रख सकते हैं ?”

“दासी नहीं, रानी !” कहकर सुमेर ने उसे कसकर हृदय से छगा लिया।



हाय विधवा आशा ! तूने यह क्या किया। कुवेर ! दौड़ो।

वि०

[८]

जो कुछ भी हो, मोंट्रनाथ न पुनः वी शेटे बादर के साथ अपने
 काँटें टारता । शिरण ने स्त्रियों को कुछ में साँवला दी । स्त्रियों ने
 भी शिरण के साथ चलाया व्यवहार किया ।

सब कुछ समाप्त हो जाने के बाद एक दिन मोंट्रनाथ ने पृथ्वी
 से पुनः ले कहा—“स्वामी सुमेश्वर न जायेंगे ।”

पृथ्वी ने पूरा साधारण कहा—“कहिए, तो युक्ताकर देंगे ?”

चल-भर पुर स्तर मोंट्रनाथ ने कहा—“देखिए, पुनः
 धातु ! मैं अब पूरी साक्ष्यता हूँ । मैं अब साक्ष्यता हूँ कि, नीच से-
 नाथ बादर हमारा प्रपञ्च अपने साथ ले ले लें । स्त्री सुमेश्वर
 और स्त्री की साथ जो वे जो अभी-अभी पूरा हो ही जायेंगे ।”

पृथ्वी ने खींच ही ले ली—“तो बादर सुने क्या करने भी साथ
 लेते हैं ?”

मोंट्रनाथ ने कहा—“मैं अब पूरा सोच चुका हूँ । बादर नष्ट
 तावर नहीं कर सकते अपने शक्ति, वीर ताँती का शिरण हमारा
 के सिद्धे माने बादर मोंट्रनाथ के साथ नहीं हो साक्ष्यता । अब, बादर
 शिरण में मोंट्रनाथ को ले लेंगे ताँती का शक्ति । बादर बादर सब समझ
 ला लेंगे ।

पृथ्वी मोंट्रनाथ के साथ न बोल—“तो तो बादरों का लेंगे ?”

“कहिए तो बादर, तो सुमेश्वर को बादर की शक्ति की शक्ति
 के सिद्धे माने ।” मोंट्रनाथ ने पूरा पूरा कहा ।

पृथ्वी ने सब दाख शिरण से कहा । शिरण पुनः पृथ्वी के साथ—

“तब ठीक है। और, क्रायदे से भी सभी कुछ हमों को मिलना चाहिए, किंतु कानपुर में भी साथ चलूंगी। ज़रा आखिरी बार सबसे मिल-जुल आऊँगी।”

कुवेर ने हँसकर कहा—“ठीक है। वास्तव में माल तो सब आशा का था, किंतु तुम्हारे हाथ लग गया।”

मुँह मटकाकर किरण ने कहा—“बढ़ी आशा कहीं की आई छोड़दी।”



किंतु किरण को क्या मालूम था कि इस सारी रियासत का सर्वस्व इस समय आशा के प्रेम का भिखारी बना हुआ सर्वस्व गँवा चुका था।

सुमेर ने हँसकर आशा के गाल पर चुटकी काट ली, और कहा—“बनारसी माड़ी तुम पर कितनी खिलती है आशा।”

“लेकिन यह सब चार दिन का है। जिस दिन भाभी आ गई, उस दिन हमारा और तुम्हारा ठिकाना न लगेगा।” आशा ने कहा।

और मचमुच ‘भाभी’ ने किवाड़ पर धक्का दिया। सुमेर ने बिना सोचे-समझे किवाड़ खोल दिए। उसे स्वप्न में भी आशा न थी कि भैया और भाभी इतनी जल्दी, बिना सूचना दिए, लौट आएँगे।

आशा सोलहो शृंगार किए हुए थी, वह किरण को देखकर अपने कमरे की ओर भागी, किंतु किरण ने सब कुछ देख लिया।

वह माये पर हाथ रखकर, वहीं आँगन में, बैठ गई। सुमेर चुपचाप ऊपर अपने कमरे में चला गया।

किरण की आँखों के आगे अँधेरा छा गया। उसे स्वप्न में भी आशा और सुमेर से यह ठम्मीद न थी।

कुवेर ने कहा—“उठो, बैठ क्यों गई ? आशा कहाँ गई । ज़रा. ”

किरण ने बात काटकर कहा—“हल्ला मत मचाओ । तुमने तो सारी अकल बेच खाई है । देखते नहीं, घर में क्या हुआ है ?”

कुवेर की समझ में अब तक बात न आई थी । वह भौंचक्के-से होकर चारों तरफ़ देखने लगे ।

किरण मुँह बनाकर बोली—“जब कहा था कि दूसरे की जवान-जहान लडकी को घर में रखना ठीक नहीं, तो मेरे ऊपर डपट दौड़े थे । अब भागो जैमा किया था । धन्य हो आशा महारानी ! बड़ी पतिव्रता निकली ।”

अब कुवेर की समझ में आया । वह इस घटना से बिल्कुल अवाक रह गए ।

“लेकिन हल्ला मत मचाओ । जो कुछ हुआ है, उसे सहूलियत से निपटना पड़ेगा । हल्ला मचाने से और मामला बिगड़ेगा और बदनामी होगी ।” कुवेर ने शांत भाव से कहा ।

किरण बात समझ गई । वह चुप हो गई । थोड़ी देर में आशा के कमरे के पास जाकर उसने आवाज़ दी—“चाची, क्या मो गई ?”

आशा की मा आजकल बीमार रहती थी । उसे नेत्रों से भी न दिखाई देता था । किरण की आवाज़ पहचानकर बोली—“क्या था गढ़े बेटी ! आओ ।”

आशा अंदर से किवाड़ बंद किए हुए थी । किरण ने आवाज़ देकर कहा—“अरी आशा ! क्या भीतर ही घुसी रहेगी । त्वोल फिन्दाहे ।”

इतनी देर में आशा अपना शृंगार उतार चुकी थी, किन्तु उसके ताबूल-रजा शवर, हाथ-पैर में मेहँदी और शरीर से नैट-पाउडर की लपटें क्या छिपाई जा सकती थीं ।

आशा ने किवाड़ खोलकर किरण के पैर छुए, और बाहर निकल गई। उसे किसी के भी सामने आने में लजा आ रही थी। वह दवे पाँव ऊपर सुमेर के कमरे में पहुँची, और बोली—“अच्छे हो महात्मा तुम ! भाभी सब कुछ समझ गई । अब कहीं ठीक है ?”

सुमेर ने सूखी हँसी हँसकर कहा—“कुछ कहती थी क्या ?”

“कहती क्या ? और क्या लट्ट मारतीं। मैं तो मुँह दिखलाने लायक रही नहीं।’ आशा ने जरा गंभीर होकर कहा।

“जाओ, आराम करो । डर की कोई बात नहीं। सब समझ लूँगा।” कहकर सुमेर ने चादर थोढ़ ली।

आशा चुपचाप आकर किरण के पास बैठ गई।



दूसरे दिन सबेरे कुवेर ने सुमेर को बुलाकर कहा—“तुम्हें महेंद्रनाथ ने बुलाया है ; आज रात की गाड़ी से तुम रायपुर चले जाओ।”

सुमेर क्षण-भर तक नीचा मिर किए खड़ा रहा, फिर बोला—“मेरी उन्हें क्या जरूरत आ पड़ी ?”

“हाँ, जरूरत है, तभी तो बुलाया है। रात की गाड़ी से चले जाओ।” कुवेर ने जोर देकर कहा।

सुमेर चुपचाप चला गया।

एकात में कुवेर को पाकर किरण ने कहा—“सुमेर चला जाय, तो आशा से भी नमझूँगी। तुम कुछ बोलना नहीं बीच में।”

कुवेर चुप रहे।

शाम को रायपुर जाने की तैयारी हो रही थी। आशा ने सुमेर के पास पहुँचकर कहा—“आपका लौटना अब मुश्किल है।”

“क्यों ?” सुमेर ने सादर्य पूछा।

आशा चुप रही। उसकी आँखों से आँसू वह चले थे।

सुमेर ने उसे धैर्य देते हुए कहा—“मैं शीघ्र लौटूँगा आशा! तुम धैर्य रखो। भैया की आज्ञा पालन करना जरूरी है, नहीं तो मैं जाता भी नहीं।”

आशा क्षण-भर चुप रहकर बोली—“फिर मैं चाहती हूँ कि आप अब न लौटें। आप क्यों अपना भविष्य बिगाड़ रहे हैं।”

सुमेर ने सूखी हँसी हँसकर कहा—“किसी का भविष्य कोई बना-बिगाड़ नहीं सकता। मेरा वहाँ ठहरना अशभव है।

आशा ने जवाब दिया—“मैंने न-जाने कहाँ से आकर आपकी उन्नति का पथ रोक लिया है। मैं मर जाऊँ, तो कितना अच्छा हो।”

सुमेर चुप रहा।

आशा बोली—“यदि आप मुझसे प्रेम करते हैं, तो मेरी बात भी मानिए। मुझसे वादा कीजिए कि आप रायपुर से आने की चेष्टा करके काम बिगाड़ेंगे नहीं। मेरा घर मुझे ही सर्वनाश की जड़ समझेगा। बोलिए, वादा करते हैं?”

सुमेर चुप रहा। आशा ने उसके समीप जाकर पैर पकड़ लिए, और बोली—“कुवेर दादा के मुँह पर बड़े एहसान हैं, मैं उनका घर बरबाद नहीं करना चाहती। यदि मैं कलकिनी होकर भी उनका घर बचा सकी, तो अपने को धन्य समझूँगी। बोलिए, क्या मेरी बात मंजूर करते हैं?”

“फिर तुम्हारे बिना मुझसे कैसे रहा जायगा आशा! कभी तुमने यह भी सोचा है?” सुमेर ने कहा।

“जो कुछ भी हो, अब आप मुझे भूल जाइए। यदि आप जल्दी लौटें, तो निश्चय ही अब मेरी और आपकी कभी भेंट न होगी।”

आशा ने दृढ़ता-पूर्वक कहा।

सुमेर चुप रहा। आशा उठकर बाहर चली गई।

किरण ने उसे ऊपर से आते देखकर मुँह बना लिया। मन-ही-मन बोली, समझूँगी तुझे भी चुड़ैल। बड़ी मस्ती सवार है। जाने दे अपने खमस को।

उस दिन रात को सुमेर रायपुर रवाना हो गया। किरण के जो में जो आया।

सुमेर के जाते ही किरण ने आशा पर अत्याचार करने प्रारम्भ कर दिए। वह चाहती थी, किसी तरह ऊबकर आशा घर से काला मुँह करके जाय या कहीं जाकर डूब मरे, तो घर का कलक दूर हो। उसे आशा से अब किसी तरह का प्रेम न था।

किंतु कुबेर इसके समर्थक न थे। वह समझते थे, सभी का पैर ऊँचा-नीचा पड़ता है, और फिर इसमें आशा का क्या दोष? वह सदैव पुरुष पर ही उसका उत्तरदायित्व रखते थे। और, आशा के विषय में तो वह अपने को भी दोषी समझते थे। सुमेर का विवाह करने में जो त्रुटि हुई थी, उसका भी दोष वह अपने मिर पर रखते थे। फिर आशा का क्या दोष?

किंतु किरण सारा दोष आशा ही पर रखती थी। उसने कुबेर को झिड़कते हुए कहा—“इसमें मर्द-बच्चा का दोष ही क्या? अरे, संभलकर तो इस चुड़ैल को चलना चाहिए था। उसमें ज़रा भी न सोचा गया कि मैं कच्चे घड़े के समान हूँ। जवानी सवार हुई थी। मैं उसे निकालकर छोड़ूँगी। डूब नहीं मरती निर्लज्जा कहीं की! मुँह दिखाती है।

कुबेर ने कहा—“ता आबिर उसके निकल जाने में भी तो बदनामी है। आबिर वह कहीं जाकर डूब मरे?”

“चूल्हे-भाड़ में जाय। उसे तो मरना ही पड़ेगा। मरे घर में वह श्रय नहीं रह सकती। मैं उसे एक दिन सादू मारकर निकाल बाहर करूँगी।” किरण ने हाँफते हुए कहा।

दरवाज़े की ओट में खड़ी हुई आशा सब सुन रही थी। एक धीमी-सी निश्वास लेकर वह अपने कमरे की ओर चली गई।

किंतु दूसरे दिन उसके लिये और एक दुःखद घटना हो गई। दुःख से कराहती हुई उसकी बूढ़ा मा उसे मदद के लिये छोड़कर निश्चेष्ट हो गई। आशा रोई, और चुप हो गई।

किरण के प्रत्याचार बढ़ रहे थे, अब तो वह उसे खुलमुखला गालियाँ देती और हूब मरने के लिये कहती। आशा को अपना जीवन अब भार मालूम हो चला था।

एक दिन उसने रात को लेटे-ही-लेटे सोचा, अब इस घर में मेरा कोट्टे नहीं। किंतु जाऊँ भी तो कहाँ जाऊँ ? वह अब न आएँगे, और यदि आए भी, तो मुझे साथ में लेकर वह विपत्ति में पड़ेंगे। फिर क्या करूँ ? क्या आत्महत्या कर लूँ ? . न, अब यह मुझसे न हो सकेगा। मुझे अब जीवन से प्यार हो गया है। जब फिमल ही पड़ी हूँ, तो सुख क्यों न ढूँढ़ूँ ? मैं क्यों मरूँ ? क्या मैं अपना सुख कहीं अन्यत्र नहीं ढूँढ़ सकती ? किंतु मुझे कौन शरण देगा ? कौन कौन..।

महसा उसे देवेंद्र की याद आई। देवेंद्र बुरा है, तो क्या, मेरे लिये तो सब कुछ न्योछावर करने को तैयार था। मैं भी तो अब पहले की-सी पवित्र आशा नहीं हूँ। क्या अब देवेंद्र मुझे आश्रय न देगा ? सुमेर—सुमेर, वह क्या कहेंगे ? किंतु मैं उन्हें चाहती, हृदय से चाहती हूँ। उनके मार्ग का रोड़ा बनकर उन्हें बरबाद न करूँगी। वह मेरे अपने हैं और सदा अपने रहेंगे। वह प्रमन रहेंगे, तो मैं भी शान्ति-पूर्वक रह सकूँगी। किंतु देवेंद्र ? वह मेरा आश्रयदाता हो सकता है, मैं उसके प्रेम की चामना भी कटपुतली बनूँगी। ठीक, देवेंद्र, अब तुम्हारे ही पास आश्रय लूँगी। इस घर में अब एक सख भी न रह सकूँगी।

आशा उत्तेजित होकर उठ बैठी । रात काफ़ी हो चुकी थी, लगभग १० का समय था । वह चुपचाप दरवाज़ा खोलकर घर के बाहर हो गई ।

गली में सज़ाटा छाया हुआ था । आशा डरी किंतु पैर बढ़ाती हुई देवेंद्र के घर के पास पहुँच गई । वह चली तो आई, किंतु उसके पैर पीछे पड़ रहे थे । रात्रि बढ़ रही थी, उसने धड़कते हृदय से दरवाज़े पर धक्का दिया ।

“कौन ?” अंदर से आवाज़ आई ।

“मैं ।” आशा ने सूखी आवाज़ से कहा ।

झिंझाड़ खुल गए । आशा और देवेंद्र आमने-पामने थे ।

“कौन ? आशा ! तुम । क्यों ? कैसे ? आशा ।” देवेंद्र ने लड़-खड़ाती ज़बान से कहा ।

आशा ने समझा, देवेंद्र हांश में नहीं है । वह सब कुछ निश्चित कर चुकी थी ।

“क्यों आई ? आधी रात में, क्या मुझसे कुछ काम है ?” देवेंद्र ने मँभलते हुए कहा ।

“भीतर चलो ।” आशा ने कहा ।

दोनों भीतर गए । एक मजे-सजाए कमरे में सोफ़े पर आशा बैठ गई । देवेंद्र भी सामने बैठ गया ।

दोनों थोड़ी देर चुप बैठे रहे । आशा ने कहा—“शराब छोड़ सकते हो ?”

“क्या ?” देवेंद्र के मुँह से निकला ।

“मैं पूछ रही हूँ, शराब छोड़ सकते हो ?” आशा ने दृढ़ स्वर में पूछा ।

“शराब ? हाँ, नहीं—तुम्हारा मतलब ?” देवेंद्र ने लड़खड़ाती ज़बान से कहा ।

“मैं पड़ती हूँ, शराब छोड़ सकते हो ?” आशा ने दोहराया ।

“छोड़ भी सकता हूँ ।” देवेंद्र ने आगे की बात सुनने की नीयत से कहा ।

“छोड़ सकता हूँ नहीं , आज से शराब पीना छोड़ देना पड़ेगा ।” आशा ने आज्ञा के तौर पर कहा ।

“तुम्हारे पीछे सब कुछ छोड़ सकता हूँ सुंदरी ।” देवेंद्र ने प्रसन्न होकर कहा ।

आशा थोड़ी देर चुप बैठी रही, फिर बोली—“कानपुर छोड़ना पड़ेगा ।”

“छाड़ दूँगा । मेरे पास धन की कमी नहीं ।”

आशा फिर चुप । देवेंद्र उसके रूप पर पागल हो रहा था ।

“कल शाम तक लखनऊ चले जाना पड़ेगा ।” आशा ने फिर मुँह गोलता ।

मगीन की भाँति देवेंद्र के मुँह से निकला—“अच्छा, कल ही—अवश्य ।”

उसी दिन—हाँ, उसी रात को आशा ने आत्म-समर्पण कर दिया ।

देवेंद्र को सुह-माँगी मुराद मिल गई ।



[६]

मवेरे घर में आशा का पता न था । किरण सब कुछ समझ गई । उसने आराम से साँस ली ।

कुवेर ने कहा—“यह बुरा हुआ । अवश्य उसने कहीं जाकर आत्महत्या कर ली ।”

• किरण बोली—“बलो, पाप कटा । उसे मरना ही चाहिए था ।”

कुवेर को क्लेश हुआ । उनकी अतरात्मा ने कहा—“यह सब कुछ अच्छा नहीं हुआ । वह हमारी आश्रिता थी ।”

यात पुरानी पड़ गई । कई दिन बाद कुवेर ने कहा—“अब ज्यादा समय नष्ट करने से क्या लाभ ? हमें रायपुर चलकर काम सम्भालना चाहिए ।”

“चलो, मैं तैयार हूँ । घर में ताला लगा देंगे । सामान ले जाने का ज्यादा झकड़ न करना चाहिए । फिर कभी आकर इसे ठिकाने लगा देंगे ।” किरण ने उत्तर दिया ।

कुवेर ने दो दिन के भीतर दौड़-धूप कर जाने की तैयारी कर दी । तीसरे दिन रायपुर के लिये दोनों चल दिए ।

रायपुर पहुँचकर कुवेर ने देखा, महेंद्रनाथ का एक साला सपरिवार आकर अपनी बहन की सहायता से, जायदाद हड़पने की कोशिशें कर रहा है । महेंद्रनाथ की स्त्री प्रभा अपने भतीजे महेश को गोद लेने की तैयारियाँ कर रही है ।

साले का नाम था रामजीवन ।

प्रभा को किरण और कुवेर का आना अच्छा नहीं लगा ।

महेंद्रनाथ और प्रभा का गोद लेने के विषय में सवर्ष चल रहा था। महेंद्रनाथ इस संकट में न पड़ना चाहते थे, और प्रभा इस बात के लिये तुली हुई थी। उसने रामजीवन को स्टेट का मैनेजर नियुक्त करवा दिया था।

सुमेर का अजब हाल था। रज्जो का और उसका अब तक बोल-चाल तक न हुआ था। राजा नरेंद्रनाथ की अभिमानी पुत्री अब तक ऐंड़ी हुई थी, और सुमेर भी झुकना न चाहता था।

कुवेर को यह सब देखकर निराशा ही हुई। उसने सुमेर को बुलाकर कहा—“ऐसा कब तक चलता रहेगा। इस प्रकार तो हम अपना सर्वनाश कर लेंगे।”

सुमेर थोड़ी देर चुप रहकर बोला—“मैं तो कानपुर जाना चाहता हूँ। यहाँ मेरा निर्वाह न हो सकेगा।”

कुवेर को सुमेर की बात कुछ अच्छी न लगी। उन्होंने कहा—“आखिर कानपुर जाकर क्या होगा? हम लोग अकेले यहाँ करेंगे क्या?”

“आपकी मर्जी। मगर मैं यहाँ अब और अधिक रहकर अपमान परदाशत न कर सकूँगा।” सुमेर ने दृढ़ता-पूर्वक कहा।

कुवेर चुप हो गए।

सुमेर को आशा का सारा हाल मालूम हो चुका था, अतएव उसका मन कानपुर जाने के लिये छटपटा रहा था। अगर रज्जो चारती, तो परिस्थिति बच सकती थी, किंतु उसने बात तक करना ठीक न समझा।

एक दिन बातो-ही-बातों में किरण ने रज्जो से कहा—“तो कब तक यह लड़ाई ठनी रहेगी यह?”

रज्जो ने दृढ़ता-पूर्वक कहा—“बानूजी का अपमान करनेवाले को मैं कभी क्षमा नहीं कर सकती।”

किरण चुप हो गई। उसने फिर कुछ कहना ठीक न समझा।

महेंद्रनाथ ने कुवेरचंद्र को धीरे-धीरे रियासत का सारा प्रबंध सौंप दिया। वह जानते थे, रामजीवन परले सिरे का मूर्ख है, अतएव वह उसे रियासत का प्रबंध दे ही न सकते थे।

रामजीवन ने यहन से शिकायत की। प्रभा ने महेंद्रनाथ को धाधो लिया—“आखिर कुवेरचंद्र से ही कौन अक्लमदी का भन्वा झूल रहा है ?”

महेंद्रनाथ ने कहा—“आखिर वह भी तो आधे के सामीदार हैं। उनका भी तो हक है ?”

हक-वक तो कुछ भी नहीं, लेकिन तुम उन्हें बिर पर चढ़ा रहे हो। पूछो, उनका यहाँ क्या काम ? चार दिन में महेश बढ़ा होकर सब कुछ सँभाल लेगा।”

महेंद्रनाथ चुप रहे। प्रभा ने झल्लाकर कहा—“मतलब की बात पर कैसे चुप हो जाते हो ? आखिर तुम्हारा इरादा क्या है ?”

“कैसा इरादा ?” महेंद्रनाथ ने धीरे से पूछा।

“कैसा इरादा ? कैसे बन रहे हैं ? महेश को गोद लेने का इरादा, और क्या ?” प्रभा ने मुँह बनाकर कहा।

“अच्छा, फिर देखा जायगा।” कहकर महेंद्रनाथ बाहर चल दिए।

प्रभा झल्लाकर रह गई। उसने रामजीवन को बुलाकर कहा—“देखो जी, तुम्हारी बड़ी शिकायत कर रहे थे। तुम ठीक-ठीक काम क्यों नहीं करते ?”

रामजीवन खीसे निकालकर बोला—“मैं—मे—क्या नामके—सब कुछ तो करता हूँ—सभी कुछ। अभी दस दिन—क्या नामके—उसने—क्या नामके—कुवेर, हाँ, कुवेर ने मुझे धमकाकर रोक दिया—क्या नामके—”

प्रभा को हँसी आ गई, बोली—“क्यों धमकाया था कुबेर ने तुम्हें ?”

“क्या नामके—मैं रघुनाथ को रुपया न देने पर डाँट रहा था—
क्या नामके—कुबेर ने बीच में आकर उसे छोड़ दिया—मैं—क्या
नामके—खून का घूँट पीकर रह गया । एक दिन—क्या नामके—
साले को फटकारक रख दूँगा—क्या नामके—वह होता कौन है ।”
रामजीवन ने क्रोध से दाँत पीसते हुए कहा । प्रभा चुप रह
गई । रामजीवन चला गया ।

किंतु हारनेवाली प्रभा न थी । उसने सोच लिया था कि वह
जैसे भी हो, उन्हें महेश को गाद लेने के लिये राज़ी करेगी ।

एक दिन सुमेर ने जाने की तैयारी कर दी । कुबेर एक तो ऐसे ही
चारों ओर से घिरे हुए थे, उधर सुमेर की हरकतों ने उसे और
भी परेशान कर रक्का था ।

उसने खिजलाकर सुमेर से कहा—“अगर तुम्हारी बुद्धि ऐसी ही
है, तो तुम कानपुर जा सकते हो ।”

सुमेर बिना किसी बात की परवा किए ही उसी दिन रात को
कानपुर चल दिया ।

रास्ते में न-जाने क्यों उसे आशा से फिर एक बार भेंट हो जाने
की उम्मीद हो गई ।

सुमेर के चले जाने पर महेंद्रनाथ को आश्चर्य हुआ । उन्होंने
कुबेर को बुलाकर पूछा—“क्यों चले गए ?”

कुबेर ने घण-भर चुप रहकर कहा—“क्या जाने ? कहते थे, अब
यहाँ तबियत नहीं लगती ।”

“थारने राका नहीं ?” महेंद्रनाथ ने पूछा ।

कुबेर चुप रहे । महेंद्रनाथ ने सोचा, भाई को भाई नहीं देख
सकता । क्या जाने इनके मन में क्या है ?

प्रकाश में बोले—“कब तक लौटेंगे ?”

“कुछ ठीक नहीं ।” कहकर कुवेर चुप रहे । महेंद्रनाथ चले गए ।



कानपुर पहुँचकर सुमेर ने आशा का पता लगाना शुरू किया, किंतु उसे निराशा ही हुई । वह विचिष्टों की तरह दिन-भर शहर में गश्त लगाता, और शाम को घर आकर पड़ रहता । उसे आशा के ऊपर क्रोध आया, क्या मेरे आने तक रुका भी न गया । यदि आत्महत्या ही करनी थी, तो मुझे क्यों वरबाद कर दिया । किंतु क्या सचमुच ही उसने आत्महत्या कर ली ? और, आखिर उसे ठौर ही कहाँ था ? इसमें जरूर भाभी की शराबत होगी । उन्होंने बेचारी की खूब दुर्गति की होगी । और उसने तग आकर आत्महत्मा कर ली ।

सुमेर का मन कानपुर से उचाट हो गया । उसके पास के रुपए भी खर्च हो चले थे । कुवेर से वह रुपए माँगना न चाहता था । अब उसे नौकरी की तलाश थी ।

रज्जों के विषय में उसने सोचा, कैंसी अकड़ी हुई है ? मुझे अपने धन का गुलाम समझ रही है । भैया और भाभी भी कैसे धन में चिपटे पड़े हुए हैं ! ये चे ही कुवेर दादा हैं, जो भर-पेट धन-कुपेरी की बुराई किया करते थे । छि ! क्या समय है ? किसी के भी सिद्धांतों का कुछ ठीक नहीं । उनके लिये मैं कुछ नहीं हूँ ।

सुमेर नौकरी की तलाश में लखनऊ चल दिया । बड़ी दौड़-धूप के बाद उसे एक दफ्तर में ४०) मासिक की जगह मिल गई । उसने उसी को जीवन-यापन करने का जरिया बना लिया ।

उसने कुवेर को भी लखनऊ आने और नौकरी करने की सूचना न दी । उसे भाई और मौजादे से घृणा हो गई थी ।

[१०]

देवेंद्र अपना सब कुछ ले-देकर आशा के साथ लखनऊ आ बसा । अब वह पहले का-सा देवेंद्र न था । उसने अपना वादा पूरा किया, और थोड़े ही दिनों में उसमें बड़ा परिवर्तन हो गया । वह आशा को लेकर सुखी था ।

किंतु क्या आशा भी सुखी थी ? उसके हृदय में एक बवडर था, कभी न बुझनेवाली एक आग थी, जो उसका हृदय उठते-बैठते जलाती रहती थी । उसने देवेंद्र को सुखी करने की चेष्टा की, क्योंकि वह उसे अपना आश्रयदाता समझती थी । देवेंद्र उसे सुखी करने के लिये सब कुछ करता था, और आशा उसकी कृतज्ञ थी । उसे इस बात पर संतोष था कि देवेंद्र अब आदमी बन चुका है । उसने देवेंद्र को कभी इस बात का अनुभव नहीं करने दिया कि उसके हृदय में कुछ और है ।

वह सुमेर के विषय में चिंतित रहती, किंतु रायपुर से किसी प्रकार की खबर प्राप्त करने का उसके पास कोई साधन न था ।

देवेंद्र ने लखनऊ में मित्रों की एक अच्छी-न्वासी मदली बना रखी थी । कभी-कभी वह सबको निमंत्रित करता और मनोरंजन का सुख उठाता ।

आशा किसी से मिलती जुलती न थी । उसने देवेंद्र का सबसे मिलने की स्वतंत्रता दे रखी थी । देवेंद्र के सबसे घने मित्र थे एक पंगाली यादू—मि० घोष । मिसेज़ घोष भी कभी-कभी आया करती । आशा से उनकी पटती थी ।

एक दिन देवेंद्र ज़रा देर में आया। आशा भी बड़ी रात तक जागती रही थी, बाद में उसे नींद आ गई। उसे बिलकुल पता न चला कि देवेंद्र कब आए। सबेरे जब उसकी नींद खुली, तो उसके बदन में काफ़ी दर्द था।

“कैसी तबियत है आशा ?” देवेंद्र ने उसके बिर पर हाथ फेरते हुए कहा।

“ठीक है। आप रात को कब आए, मुझे मालूम नहीं पड़ा।” आशा ने पूछा।

“कल रात को अमीनाबाद में एकाएक सुमेर से भेंट हो गई। लगभग दो घंटे साथ रहकर पीछा छोड़ा पाया। बहुत दुबले हो गए हैं सुमेर।”

आशा के हृदय पर चोट पड़ी। उसने अपनी प्रेम-कथा देवेंद्र से छिपा रखी थी। सुमेर का समाचार सुनकर उसे बड़ी घेदना हुई। न-जाने क्यों उसकी इच्छा सुमेर को एक बार देखने की थी।

“लखनऊ क्यों आए थे ? क्या चले गए ?” आशा पूछ बैठी।

“रायपुर में कुछ खटक गई उनकी, मालूम पड़ता है। वह लखनऊ में नौकरी की तलाश में है। जायद उन्हें किसी दफ्तर में एक साधारण-सी नौकरी मिल भी गई है। मुझे तो उन पर बड़ी दया आती है। कुवेर का भाई के साथ ऐसा व्यवहार न करना चाहिए था।” देवेंद्र ने सुमेर के प्रति सहानुभूति दिखाते हुए कहा।

“हूँ।” करके आशा चुप हो गई।

फिर वह दिन-भर उठी नहीं। उसे न-जाने क्यों ऐसा मालूम पड़ने लगा, जैसे सुमेर की मारी विपत्तियों का कारण वही हो।

दो-तीन दिन बाद उसने एक दिन देवेंद्र से फिर पूछा—“उसके बाद फिर सुमेर से आपकी भेंट हुई या नहीं ?”

“हाँ, जिस दफ्तर में मि० घोष काम करते हैं, उन्हीं में उन्हें ४० मासिक की एक जगह मिल गई है। पूछो, इतने में उनकी गुज़र कैसे होगी। खाना बनाने के लिये भी तो एक नौकर रखना पड़ेगा।”

देवेंद्र ने कहा।

“मेरे विषय में तो कुछ नहीं कह रहे थे ?” आशा पूछ ही बैठी।

“उन्होंने मुझे बतलाया कि आशा की मृत्यु हो गई है।” देवेंद्र ने हँसते हुए उत्तर दिया।

आशा सूखी हँसी हँसकर चुप हो गई। उसने अनुभव किया कि वास्तव में मेरी मृत्यु हो गई है। यह भी कोई जीवन है ?

नौकर ने आकर खबर दी—“घोष बाबू आए हैं।”

देवेंद्र बैठक में चले गए। उन्होंने आश्चर्य के साथ देखा, सुमेर भी वहाँ मौजूद थे।

“आइए।” कहकर देवेंद्र ने उनका स्वागत किया।

“कहिए, आज तो मालूम पड़ता है, घर में ही घुसे रहेंगे। श्रीमतीजी की तबियत तो ठीक है न ?” घाप बाबू ने पूछा।

“हाँ, ठीक है। देवेंद्र ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया।

“क्या देवेंद्र ने विवाह कर लिया ?” सुमेर आश्चर्य मॉन्ने लगे। उन्होंने छल-भर रुककर कहा—“विवाह कब किया तुमने देवेंद्र बाबू ?”

“थोड़े ही दिन हुए हैं।” कहकर बात टालने की गरज़ से उन्होंने घोष बाबू की तरफ़ घूमकर कहा—“मिसेज़ घाप बहुत दिनों से नहीं आई ?”

“आजकल उनकी भी तबियत कुछ खराब है। आप जानते हैं, आगे दर्जन बच्चों की माँ हमारे देश में किस प्रकार स्वस्थ रह सकती है। हमने तो करीब-करीब पेंशन दे रखी है।” कहकर घोष बाबू हँस पड़े।

सुमेर चारो ओर देवेंद्र का वैभव देख रहे थे । कमरे की सजावट से उनका चित्त बड़ा प्रमत्त हुआ । सहसा पर्तों की ओट में उन्हें ऐसा मालूम हुआ, जैसे दो आँखें उनकी ओर देख रही हों । उनकी दृष्टि बार-बार उस ओर जाने लगी ।

देवेंद्र उठकर अदर गए । दरवाज़े के पास ही खड़ी हुई आशा ने पूछा — “क्या सुमेर आए हैं ? बहुत दुबले जान पड़ते हैं ।”

देवेंद्र ने हँसकर कहा — “अब उधर तबियत मत ले जाओ, नहीं मेरा दिवाला ही आउट हो जायगा । चलो, थोड़े-से पान लगाकर भेज दो ।”

देवेंद्र बैठक में चले गए । आशा ने एक बार फिर पर्तों से झाँककर देखा, ओर एक हलकी-सी साँस लेकर पान लगाने बैठ गई । उसने नौकर को दो तश्तरियों में नाश्ता सजाने की आज्ञा दी । नौकर रकाबियाँ तथा मिठाई ले आया ।

आज इतने दिनों बाद अपरिचित सी आशा सुमेर के लिये नाश्ता सजाने बैठी । नौकर तश्तरियाँ बैठक में ले गया ।

“नाश्ता तो बढ़िया सजाया है भाभीजी ने ।” मिठाई मुँह में रखते हुए सुमेर ने कहा ।

आशा पर्तों की ओट से सुन रही थी । उसका हृदय लहरें ले रहा था । सुमेर की दृष्टि भी उधर ही थी ।

नाश्ते के बाद देवेंद्र दोनों के साथ घूमने चल दिए । चलते वक्त सुमेर ने एक बार पीछे फिरकर फिर पर्तों की ओर देखा । आशा बराबर वहीं पर थी ।

उन लोगो के चले जाने के बाद आशा को ऐसा मालूम पड़ा, मानो वह फिर दूसरी ओर खिच रही है । उसके हृदय में एक छोटा-सा अंतर्द्वंद्व आरंभ हो गया था ।

मार्ग में जाने हुए सुमेर सोचने लगे, देवेंद्र की स्त्री अच्छे

चरित्र की नहीं मालूम पड़ती । उसका मेरी ओर एकटक देखने का क्या अर्थ था । मैं भी तो विचलित हुआ-मा जान पड़ता हूँ । एक बार उसे अच्छी तरह देखने की इच्छा क्यों बलवती जान पड़ती है ? क्या यहाँ आकर भी शांति न मिल सकेगी ।

उनका ध्यान भग करते हुए मि० घोष ने कहा—“क्या सोच रहे हो फ़िलॉसफ़र साहब !”

“कुछ नहीं, यों ही ।” कहकर सुमेर चुप हो रहे ।

घर पहुँचकर सुमेर को इसी उधेड़बुन में अच्छी तरह नींद नहीं आई । वह सोचने लगे, मेरा जीवन भी क्या है ? रज्जो, आशा, सभी तो एक-एक करके मेरे पास से चली गई । अभी तो जीवन का मेरे लिये प्रातःकाल ही हुआ है । देवेंद्र की स्त्री भी एक नई समस्या-सी जान पड़ती है । देवेंद्र को वह कहाँ मिल गई ? किंतु देवेंद्र के चरित्र से भी तो काफ़ी सुधार मालूम पड़ता है । क्या वह उसी की बदौलत है ? और, मैं क्यों उधर आकर्षित हूँ ? क्या वास्तव में वह मेरी ही ओर देख रही थी, या अपने पति की ओर ? क्या स्थिर करूँ, नमस्क में नहीं आ रहा है ।

उधर आशाने सोचा क्यों सुमेर ने लखनऊ में आकर मेरी शांति भग कर दी । मैं किसी तरह अपने दिन व्यतीत कर रही थी, उन्होंने उसने भी बाधा उत्पन्न कर दी । आखिर उन्होंने अपनी यह दशा क्यों बना रखी है ? सब कुछ होते हुए भी वह इस दीन-हीन दशा में अपने को क्यों डाले हैं । क्या देवेंद्र के साथ विश्वासघात करना होगा ? नहीं, उन्होंने सब कुछ मुझे अर्पण कर दिया है, क्या इस पर भी मैं उनकी न रहूँगी । एक बार उन्हें मिलकर समझा सकूँ, तो कितना अच्छा हो । मैं उन्हें समझाकर फिर रायपुर भेज देना चाहती हूँ । यदि ऐसा

न हुआ, तो भारी अनर्थ की संभावना है । यदि वह न गए, तो क्या मैं .

आशा सोचने-सोचते बचरा उठी । उसने सोचा, यदि हम लोग फिर मिल सकें, तो हमारा जीवन कितना सुखद हो जाय, लेकिन रज्जो, देवेंद्र, इनका क्या होगा ? ये सब दूबेंगे ।

दूसरे दिन सुमेर जब शाम को उसके घर आया, तो देवेंद्र न थे । आशा ने नौकर से कहकर उन्हें बैठक में बुलवा लिया, तथा कहला दिया कि बाबू अभी आते होंगे । सुमेर कुर्सी पर बैठ गए ।

थोड़ी देर बाद आशा ने उनके लिये नाश्ता भेजा । सुमेर ने जल-पान किया । थोड़ी ही देर में नौकर ने उन्हें एक बंद लिफाफा लाकर दिया । उस पर लिखा था—

“कृपा कर इसे घर में खोलकर पढ़िएगा । श्रव आप जाइए ।”

सुमेर का हृदय धड़कने लगा । वह पत्र पढ़ने की उत्सुकता में जल्दी से उठकर चले गए । रास्ते में बार-बार उनका मन हुआ कि वह उसे खोलकर पढ़ ले, किंतु इसी प्रकार सोचते-सोचते घर पहुँच गया ।

आशा ने लिखा था—

“मेरा हृदय आपकी ओर आकर्षित हुआ है । आपको जब से देखा है, आपसे मिलने की इच्छा हृदय को व्यथित किए हुए है । कल सबेरे वह कानपुर जानेवाले हैं । क्या आप कल १० बजे आने की कृपा करेंगे ?

आपकी”

सुमेर उद्विग्न हो उठा । क्या किसी भले आदमी की अनुपस्थिति में उसकी स्त्री से मिलना न्याय-संगत होगा ? वह आखिर इतनी जल्दी मेरी ओर क्यों आकृष्ट हो गई । इतने बड़े ऐश्वर्य में रहते

हुए भी उसका मन मेरे-जैसे माधारण स्थिति के आदमी की ओर
 क्यों आकृष्ट हुआ ? हाय ! इस जीवन में और कितने पाप करने
 पड़ेंगे । मैं उसे इस मार्ग से हटाने की चेष्टा करूँगा । आशा ! तू-
 मुझे कहीं का न रक्खा ।

मोचते-सोचते सुमेर को नींद आ गई ।

[११]

रामजीवन ने रायपुर पहुँचकर सचमुच ही गढ़बड़ी मचा दी। महेंद्रनाथ पर धीरे-धीरे प्रभावती का कुचक्र चलने लगा। वह रोज महेश को गोद लेने के लिये पति पर ज़ोर डालती। धीरे-धीरे कुनेर भी इसका रहस्य समझ रहे थे, किन्तु रियासत का सारा प्रबन्ध उनके हाथ में आ चुका था, अतएव वह अपने को काफ़ी मज़बूत बनाए हुए थे।

रज्जो को भी समय के साथ-ही-साथ अपनी गलती मालूम होती जा रही थी, किन्तु अब भी वह श्रद्धा में थी। प्रभु घर और बाहर दोनों जगह रामजीवन का महत्त्व बढ़ाना चाहती थी, और वहन के चल पर ही मूर्ख रामजीवन कभी-कभी रियासत के प्रबन्ध में अनुचित हस्तक्षेप करने की चेष्टा करता था। कुनेर बहुत कुछ बरदाश्त कर लेते थे, किन्तु धीरे-धीरे उनके लिये ये सब बातें अमर्य होती जाती थीं। उन्होंने इस बात को लेकर कई मर्तबा महेंद्रनाथ से स्पष्ट बातचीत करने की चेष्टा की, किन्तु उन्हें साहस न हुआ।

बात बढ़ती ही जा रही थी, यहाँ तक कि एक दिन किरण और चंद्रमुखी में भी कहा-सुनी हो गई। किरण ने उसे आड़े हाथों लिया—“पहले बात करने की तमीज़ सीखो, तब बात करना। तुम दाल-भात में मूसलचंद की तरह क्यों हर बात में कूट पड़ती हो?”

चंद्रमुखी ने मुँह बनाकर कहा—“मूसलचंद हूँ, तभी तो बालती हूँ। अब दाल और भात को यह मूसलचंद मिलने न देगा।”

“तो दाल और भात दोनों के साथ मसलचंद को भी एक दिन चूल्हे में भोक देंगी।” कहती हुई किरण वहाँ से चल दी।

चंद्रमुखी ने प्रभा से शिकायत की। प्रभा ने कहा—“तुम चुप रहो भाभी। थोड़े दिन और बरदाश्त करना चाहिए। किरण तो लड़ने को तैयार फिरती है। मैं भी जाँजी का लिहाज कर जाती हूँ, नहीं तो एक ही दिन में निपटारा कर लूँ।

कुवेर का यह सब सुनकर बहुत बुरा लगा। वह चुपचाप बैठे थे कि सामने से रामजीवन आता दिग्बलाई पड़ा। कुवेर ने उधर से मुँह फेर लिया।

“कहिण भाई साहब।” कहते हुए रामजीवन ने खीसें निकाल दीं।

कुवेर कुछ न बोले। रामजीवन ने कहा—“आप तो बेकार मुझसे नाराज़ मालूम पड़ते हैं। अरे, जो होना होगा, वह तो होकर ही रहेगा, आप बेकार क्यों बुरा मान रहे हैं। जिसकी चीज़ है, वह उसका मालिक है, जिसे चाहे दे। ठीक है न महाशयजी।”

रामजीवन ने झट कुवेर का हुक्का अपनी तरफ घुमा लिया, और भकाभक धुआँ फेंकने लगा। कुवेर को बड़ा क्रोध आया। उन्होंने निगाली अपनी ओर खींचते हुए कहा—“कई दफा आपसे कह चुका कि हम वारे में मैं आपसे कोई बात नहीं करना चाहता। आप क्यों बेकार मेरा मिर खाने आ जाते हैं। जाइए, अपना काम कीजिए।”

“बुरा मान गए ? हैं हे-हे—क्या नाम के—बुरा मानने की बात ही है। भला पूछिए, पराई चीज पर क्या जोर ? आप बेकार नाराज होने हैं। आप तो पूरे क्या नाम के...”

बात काटकर कुवेर बोले—“आप यहाँ से चले जाइए। मुझे बात करने की फुरसत नहीं। आप जाते हैं, या”

“हैं-हैं-हैं, अगर मैं न जाऊँ, तो ?” उसने विलक्षण ढंग से मुस्किराते हुए कहा।

“तो—तो, मैं अभी कान पकड़कर आपको बाहर निकलवा दूँगा।” कुवेर ने आपे से बाहर होते हुए कहा।

“आपके बाप का पिराई है क्या?”

रामजीवन के मुँह से इतना ही निकला था कि कुवेर ने उसकी कनपटी पर भरपूर तमाचा मारा। वह मारे पीडा के तिलमिला उठा। कुवेर ने चिल्लाकर कहा—“निकल हरामज़ादे यहाँ से! नाचीज़ कुत्ता!”

रामजीवन कनपटी सुहलाते हुए वहाँ से बाहर निकल गया। प्रभावती के पास पहुँचकर उसने सारी कथा सुना दी।

दूसरे दिन महेंद्रनाथ ने कुवेरचंद को बुला भेजा। कुवेर समझ गए कि कलवाले मामले पर ही कुछ बात होगी। चलो, यह झूठ भी आज ही तय कर डाला जाय। बहुत होगा, महेंद्रनाथ बटवारे के लिये कहेंगे, चलो, यह भी अच्छा होगा। रोज़ का झूठ मिटेगा।

आज महेंद्रनाथ कुछ अधिक उदास थे। पास ही कुर्सी पर रामजीवन ठाठ से डटा हुआ था। कुवेर पास ही पड़ी हुई आराम-कुर्सी पर लेट गए।

रामजीवन अकड़ा बैठा था। कुवेर ने उस थोर देखा भी नहीं। महेंद्रनाथ ने कहा—“रामजीवनजी, आप बाहर चले जायँ। मुझे कुवेरचंदजी से कुछ प्राइवेट बातें करना है।”

रामजीवन का सारा उत्साह भग हो गया। वह समझ रहा था, महेंद्रनाथ कुवेर को खूब डाँटेंगे और कुवेर उनके मामले में गिटगिट-कर मुझसे माफी माँगेंगे। जिस समय वह मेरे पैर पकड़कर माफी देने के लिये कहेंगे, मैं उन्हें पैर से झटक दूँगा, किंतु उसकी मारी-उमंग टूटी हो गई। वह उठकर बाहर चला गया।

उसके चले जाने पर महेंद्रनाथ ने कहा—“कुवेरचंदजी, आज मुझे आपसे एक बात बड़े कष्ट के साथ कहनी पड़ रही है। आशा है, आप क्षमा करेंगे।”

कुवेर पहले ही से समझ रहे थे, बोले—“कहिण, इसमें क्षमा माँगने की क्या बात है।”

महेंद्रनाथ ने कहना प्रारम्भ किया—“बात यह है कि आजकल जो उत्पात घर में मचा हुआ है, उसे आप भली भाँति समझ रहे होंगे। जहाँ तक मुझे पता चला है, घर और बाहर, दोनों ही स्थानों का वातावरण आपके विरुद्ध हो रहा है। कर्मचारी तक आपकी कड़ी नीति की निंदा करते हैं। आप विश्वास रखें, मेरे हृदय में आपके प्रति कोई अविश्वास नहीं, और न आप पर मेरा किसी प्रकार का संदेह ही है, फिर भी जनमत की तो परवा करनी ही पड़ती है।”

“ज़रूर करनी चाहिए।” कुवेर ने गंभीरता-पूर्वक कहा।

“लोगों का यह भी खयाल है कि आपने सुमेरचंदजी का भी पता लगाने की कोई चेष्टा नहीं की। क्या आप बता सकते हैं कि वह आजकल कहाँ है?” महेंद्रनाथ ने पूछा।

इधर दो महीने से उसका कोई पता नहीं। मैंने भी उसके ढुंढवाने, की कोई चेष्टा इसलिये नहीं की कि वह स्वयं समझदार है। ठोकरें खाने से इंसान बहुत कुछ सीखता है। एक दिन वह स्वयं अपनी भूल समझकर वापस आ जायगा।” कुवेर ने उत्तर दिया।

“खैर, जो कुछ हो। अब मामला इस हद तक पहुँच चुका है कि मुझे जान-बूझकर इसमें हस्तक्षेप करना पड़ रहा है। आशा है, आप मेरा नारा अभिप्राय समझ गए होंगे।”

कुवेर ने क्षण-भर सोचकर कहा—“निश्चय ही। मैं तो आपका अभिप्राय बहुत दिन से सोचते बैठा हूँ। यदि आप महेश को ही

अपना हिस्सा देना चाहते हैं, तो मुझे कोई आपत्ति नहीं। आप शौक से अपना हिस्सा अलग करके उसे दे सकते हैं।'

महेंद्रनाथ ज़रा हँसकर बोले—'देना-लेना तो मैं निश्चय करूँगा, किंतु अब सारा प्रबंध मैंने अपने ही हाथ में लेना विचारा है। आशा है, आप नाराज़ न होंगे।'

किंतु रज्जो के हिस्से के लिये तो आपके स्वर्गीय भाई साहब ने मुझे सरत्तक नियुक्त किया है। यदि मैं न हटना चाहूँ, तो ?' कुवेर ने कानून की शरण लेते हुए कहा।

महेंद्रनाथ फिर हँसे। उन्होंने मुस्कराते हुए कहा—'मैं यह जानता हूँ, किंतु फिर भी आपको प्रबंध छोड़ देना पड़ेगा। क्योंकि रज्जो भी आपका प्रबंध पसंद नहीं करती। लीजिए, देखिए।' कहते हुए महेंद्रनाथ ने एक सरकारी कागज़ उनके सामने रख दिया।

कुवेर ने पढ़ा। उसमें रज्जो ने सरकार के पास उन्हें हटा देने तथा उनके स्थान पर महेंद्रनाथ को नियुक्त कर देने की प्रार्थना की थी, और उस पर सरकार की स्वीकृति भी आ गई थी।

कुवेर के आत्ममस्मान को गहरा धक्का लगा। एक बार उनकी आँखों के सामने बड़े आदमियों की लीला स्पष्ट रूप से नाच गई। कैसे हठय-हीन होते हैं ये लोग ! कठोर !! निर्लज्ज !!!

महेंद्रनाथ बोले—'किंतु हम आपको किसी प्रकार अपमानित करना नहीं चाहते। आप शौक से जिस प्रकार यहाँ रहते थे, रह सकते हैं। मैंने सुमेर का पता लगाने के लिये आदमी नियुक्त किए हैं। उनका पता लगते ही मैं सब कुछ उनके हाथों में सौंप दूँगा।'

क्षण-भर चुप रहकर कुवेर ने कहा—'मैं इसके लिये आपका यश कृतज्ञ हूँ, किंतु अब मैं अपने यहाँ रहने की कोई आवश्यकता नहीं समझता। अतएव मेरा यहाँ से चला जाना ही ठीक होगा।

बड़े आदमियों के यहाँ रहकर सम्मान-सहित वहाँ से चले जाना भी बड़े मौभाग्य की बात है।”

कुवेरचंद उठकर खड़े हो गए। जैसे ही वह बाहर निकले, वैसे ही उन्होंने देखा, बगल ही में खड़ा रामजीवन हँस रहा था। कुवेर ने घृणा से अपनी आँखें फेर लीं।

जब वह वहाँ से लौटे, तो उन्हें ऐसा मालूम पड़ा, मानो सारा प्रायाद उनके इस अपमान पर हँस रहा हो। उन्हें याद आया कि एक दिन जब वह आशा की मा का पत्र लेकर आए थे, उस दिन वह किस प्रकार अकड़ते हुए इस राजप्रासाद के बाहर गए थे, किंतु आज उन्हें कितना अपमान बरदाश्त करके निकलना पड़ रहा है। वह पैर धड़ाते हुए अपने कमरे में घुस गए।

किरण ने वहाँ पहुँचकर कहा—“कैसे सुस्त पड़े हो?”

“यो ही।” कहकर कुवेर चुप हो रहे।

किरण उनके पास बैठ गई। बोली—“महेंद्रनाथ से क्या बातें हुई?”

“अब यहाँ से चलने की तैयारी करो। अब स्वयं महेंद्रनाथ ही अपना प्रवच करेंगे।” कुवेर ने धीरे से कहा।

“तो क्या वह हमारे हिस्से के भी ठेकेदार हैं? खूब कही!” किरण उत्तेजित होकर बोली।

“तुम्हारे हिस्से के मालिक की भी यही मर्जी है।” कुवेर ने शांत भाव से उत्तर दिया।

“क्या रजा भी यहाँ चाहती है?” किरण ने साज्ज्य पूछा।

“हाँ।” कहकर कुवेर चुप हो गए। किरण भी कुछ न बोली।



कुवेर ने और अधिक वहाँ रहना उचित नहीं समझा। शीघ्र ही

उन्होंने कानपुर लौटने की तैयारी की। चलते समय कुवेर महेन्द्रनाथ से मिलने गए।

“जाइएगा ? लेकिन इतनी क्या जल्दी थी ?” महेन्द्रनाथ ने सदा की टोन में कहा।

“जब जाना ही है, तो आज गए या दो दिन बाद। चलो, अपने धंधे से लगूँ।” कुवेर ने गंभीर-भाव से कहा।

“हैं-हैं-हैं, बात तो आप ठीक कहते हैं। क्षमा कीजिएगा, जो कुछ कष्ट आपको हुआ हो।” महेन्द्रनाथ ने हाथ जोड़ते हुए कहा।

“कोई बात नहीं। अच्छा, चला।” कुवेर कहकर बाहर आ गए।

बाहर कुवेर का सामान गाड़ी पर लद रहा था। रजो किरण के पैर छूने आईं। उसे आशीर्वाद देते हुए किरण ने कहा—“कब का बदला लिया वह तुमने हमसे। अपने जेठ का अपमान क्या इस प्रकार करना था ?”

रजो नीचा सिर किए खड़ी रही। वह मंदा से किरण का सम्मान करती आईं हैं, आज वह उसकी बात सुनकर कट गईं।

किरण और किसी से नहीं मिली। सामान लटकाकर जब कुवेर गाड़ी पर चढ़ने लगे, तो रामजीवन ने आकर कहा—“नमस्कार कुवेर भाई !”

कुवेर ने उसकी ओर घृणा के भाव से देखकर कहा—“नमस्कार।”

“ही-ही-ही” करके रामजीवन हँस पड़ा। कुवेर बिना उधर देखे ही चल दिए।

मार्ग में किरण ने पूछा—“कानपुर पहुँचकर क्या कहोगे ?”

कुवेर चुप रहे। किरण ने फिर कहा—“लोगों को हमारे लौट जाने पर बड़ा आश्चर्य होगा। यदि पूछें, तो क्या कहना चाहिए ?”

कुवेर ने कहा—“कह देंगे, जब तक जी लगा, रहे, जब न लगा, तो लौट आए। क्या इसमें भी किमी की चोरी है ?”

“कुछ आशा का भी पता चला ?” किरण को आज इतने दिन बाद आशा की याद आई ।

“न, शायद उसने आत्महत्या ही कर ली । सुमेर का भी कुछ पता नहीं । मारे घर का ही उलट-पुलट हो गया ।” कुवेर ने एक साँस लेकर कहा ।

“बड़े आदमियों के यहाँ विवाह करने का फल मिल रहा है । न इन बेईमानों के यहाँ सुमेर का विवाह होता, और न आज यह दिन देखने को मिलता ।” किरण बोली ।

“विवाह का क्या दोष, दोष तो अपने ही आदमियों का है ।” कुवेर ने कहा ।

“यह भी ठीक है । उस क्षणिक वैभव ने हमें और तुम्हें भी तो अधा बना दिया था ।” किरण ने उत्तर दिया ।

“हाँ, यह भी ठीक है । किंतु ईश्वर ने शीघ्र ही आँखें खोल दीं ।” कहकर कुवेर चुप हो रहे ।



आज कुवेर के लौट आने से सारा घर फिर जगमगा उठा, किंतु कुवेर को कुछ अभाव-भा खटक रहा था । किरण को सुमेर के बिना घर सूना मालूम पड़ रहा था, और कुवेर को आशा के बिना । सुमेर कानपुर आकर पाँच-सात रोज़ रहे थे, उसके बाद घर में ताला लगाकर उन्होंने डाक के जरिए ताली कुवेर के पास भेज दी थी । उसी समय से उनका पता न था ।

एक दिन जबकि किरण ने कहा—“कुछ सुमेर का पता तो लगाना चाहिए । आखिर कब तक वह लापता रहेंगे । न हो, तुम्हीं आस-पास के शहरों में चक्कर लगा आओ ।”

“हूँ ।” कहकर कुवेर चुप हो गए ।

न-जाने क्यों किरण को यह विश्वास होता जाता था कि कुवेर जान-बूझकर भाई की तलाश करने में उदासीन हैं।

कुवेर कभी-कभी सोचते, आखिर वह कहाँ चला गया ? आशा तो मर चुकी है, यह बात उसे अच्छी तरह मालूम थी, फिर वह किस उधेड़-बुन में पागल बना घूम रहा है ? यदि रज्जो से उसका मन नहीं मिलता था, तो उसका दूसरा विवाह भी तो हो सकता है। फिर वह यह सब पागलपन क्यों कर रहा है। उसकी बुद्धि अवश्य फिर गई है।

एक दिन किरण ने स्वप्न देखा, मानो आशा उसके विरहाने खड़ी होकर उसका गला टवा रही है। वह चिल्ला उठी। उसकी नोंद खुल गई। फिर उसे नींद न आई।

सवेरे ही उसने कुवेर से कहा—“सुभे तो भय लगता है, मानो आशा मरकर भी इसी घर में घूमती हो। यह सब कुछ अच्छा नहीं हुआ।”

कुवेर ने हँसकर बात टालनी चाही, किंतु किरण का इससे सात्वना नहीं मिली। वह बोली—“आशा की आत्मशान्ति के लिये हवन न करवा दो इस मकान में ? सुभे तो बड़ा भय लगता है।”

कुवेर का अग्रकी वार सचमुच हँसी आ गई। बोले—“पगली कहीं की ! क्या भूत-प्रेत पर भी विश्वास करना चाहिए ?”

उसे फिर भी धैर्य न हुआ। उसने दूसरे ही दिन रामधारी पंडित को बुलवाकर छोटा-मोटा हवन करवा डाला। पंडितजी महाराज दस-पाँच रुपए की पुडिया बना चलते हुए। तब कहीं जाकर किरण का कुछ भय कम हुआ।

कुवेर ने सब कुछ देखा, अनुभव किया, और शांत बने रहे। उन्हें सदैव किसी अनिष्ट की आशंका सी मालूम पड़ती रहती थी। वह सुमेर के विषय में भी चिंतित थे, और उन्हें डूँढ़ निकालना

चाहते थे, किंतु उन्हें स्वयं अपने से एक कमज़ोरी-सी अनुभव होती रहती थी, वह दिन-भर घर में पड़े रहते, मानो बाहर निकलने के लिये उनका हृदय और पैर, दोनों ही जवाब दे रहे हों। रायपुर की घटनाओं को भी मोच-सोचकर कभी बड़े उद्विग्न हो उठते थे। उनकी पारिवारिक, आत्मिक तथा शारीरिक शांति नष्ट हो चुकी थी, और वह ढूँढ़ना चाहते थे कि दोषी कौन है ?

कभी सुमेर, कभी आणा और कभी स्वयं अपने को ही वह अपराधी समझ बैठते। धीरे-धीरे उनका स्वभाव भी चिड़चिड़ा हो उठा, तथा भावों में भी कर्कशता आ चली। वह किसी से बात करना पसंद न करते, उन्हें आत्ममनन में ही सुख मिलता। उनमें सक्रियता का अभाव था, और यही कारण था कि वह सफलता से दूर हट जाते थे। उन्होंने यह निश्चय किया कि मैं केवल आत्ममनन और विश्राम में ही अपना जीवन-यापन करूँगा, और इसी सिद्धांत को लेकर वह अपने स्वभाव तथा कार्य-क्रम को एक विंगेय रूप देने के प्रयत्न में थे।

संध्या के समय उनके एक मित्र उनसे मिलने आए। उनका नाम था जगदीश बाबू। वह कुबेर के बचपन के संगी थे। इन्होंने भी आशा-परिवार को काफ़ी सहायता दी थी, किंतु इनकी सहायता नि स्वार्थ न थी। वह भी धीरे-धीरे आशा की ओर अनुरक्त होते गए। एक दिन जब आशा ने उन्हें फटकार बताई, तो उनकी मारी उदारता और सहृदयता उसी दिन से समाप्त हो गई। आज बहुत दिनों बाद वह कुबेर से मिलने आए। वह कलकत्ते में रहते थे, और वहीं उनका व्यवसाय भी फैला था।

जगदीश को देखकर कुबेर कुछ प्रसन्न हुए। बोले—“तुमने तो इधर आना ही छोड़ दिया जगदीश !”

“क्या करूँ भाई, किसी प्रकार जीवन का ठेला आगे बढ़ रहा

है। आजकल तो सर्वांग सुख निपट एकात में मिलता है। तुम भी तो काफ़ी बदल गए हो कुवेर। भाभी कहाँ हैं? ओ भाभी!” कहकर जगदीश चिल्ला उठे।

“कौन है भाई?” कहती हुई किरण वहाँ आ गई।

“अरे, मैं हूँ, और कौन होगा। आज बहुत दिन बाद आया हूँ। कुछ खा-पीकर ही लौटूँगा भाभी।” जगदीश किरण के निकट जाकर बोला।

आज बहुत दिन बाद किरण के मुँह पर ज़रा-सी हँसी दिखलाई दी। उसे जगदीश को देखकर बहुत दिनों की स्मृति की मलक दिखाई दे गई। किरण बोली—“कहाँ रहे इतने दिनों से?”

“अरे, कहीं नहीं भाभी। थोड़े दिनों के लिये ज़रा हवा बदलने चला गया था। बड़ी दुबली हो तुम!” जगदीश बोले।

“नहीं तो। जैसी थी, वसी हूँ। अच्छा, ठहरो, ज़रा जल-पान ले आऊँ।” कहकर किरण अदर चली गई।

“कुछ फ़िलॉसफ़र-से हो गए मालूम पड़ते हो।” जगदीश कुवेर से बोला।

“नहीं तो।” कुवेर ने धीरे से कहा।

“कुछ छिपा रहे हो क्या?” जगदीश ने उन पर निगाह गढ़ाकर कहा।

“कुछ नहीं भाई, क्या बताऊँ?” कहकर कुवेर ने एक ठंडी साँम ली।

“क्या बात है?” जगदीश ने पूछा।

क्षण-भर चुप रहकर कुवेर ने कहा—“आज बहुत दिनों से सुमेर का पता नहीं चलता। वह से उसमे कुछ अनबन हो गई थी...”

बात काटकर जगदीश बोल उठे—“ऐं, क्या कहा, सुमेर का पता

गहीं। अरे, भाई ! अभी कल मैंने उसे लखनऊ में देखा है। क्या वह यहाँ नहीं आया ?”

कुवेर चौंके—“क्या कहा ? लखनऊ में ! कहाँ मिला था तुम्हें ?”

“कल मैं सबेरे लखनऊ पहुँचा। जिस समय मैं कुछ मामान खरीदने अमीनाबाद पहुँचा, तो मुझे चौराहे के पास ही सुमेर दिख-लाई पड़ा। उसके साथ वही दुष्टात्मा देवेंद्र भी था। मैंने उससे बड़ी देर तक बातचीत की। उसने मुझे कुछ नहीं बतलाया। देवेंद्र तो मुझे अपने घर ले गया। वहीं तो कल भोजन किया था।”

“श्री किरण, ज़रा इधर आना। सुमेर लखनऊ में है—ज़रा सुनना।” कुवेर ने आवाज़ दी।

किरण एक तश्तरी में मिठाई लेकर आई। किंतु सुमेर की खबर सुनकर खड़ी-की-खड़ी रह गई।

“सुमेर लखनऊ में है।” कुवेर ने गभीरता-पूर्वक कहा।

“तो चलो, उसे ले आये। कैसे पता चला ?” किरण ने झटपट कहा।

“मेरे मित्र और कौन तुम्हारा काम कर सकता है भाभी ! पहले मिठाई तो खा लेने दो।” कहकर जगदीश ने तश्तरी खाली करना शुरू कर दिया।

अंत में यह तय किया गया कि कुवेर और जगदीश देवेंद्र के घर जायें, और उसके द्वारा सुमेर को खोज निकाला जाय।

कल सबेरे आने का वादा करके जगदीश चला गया।

उसके चले जाने पर किरण ने कहा—“न-जाने वह लखनऊ में क्या करता है ? इस लडके का भी अच्छा भला दिमाग खराब हो गया। मेरी राय से तो उसका दूसरा विवाह कर दिया जाय।”

कुवेर कुछ न बोले। किरण ने फिर कहा—“बहुत दिनों से रायपुर की भी कोई खबर नहीं आई।”

कुवेर फिर भी चुप रहे। किरण बोली—“शोर यह देवेंद्र वहाँ कैसे पहुँच गया। सुना है, सुमेर उसी के साथ था।”

“हूँ।” कहकर कुवेर मौन हो रहे।

दूसरे दिन जगदीश लखनऊ जाने के लिये तैयार होकर आ गया। कुवेर भी तैयार थे।

सवेरे ही पोस्टमैन ने एक चिट्ठी लाकर दी। उस पर रायपुर की मुहर थी। पत्र में था—

“रज्जो की हालत चिंता-जनक है। यदि हो सके, तो आने की कृपा करें।

भवदीय—

महेंद्रनाथ”

पत्र पाकर कुवेर विचलित हो उठे। फिर भी उन्होंने लखनऊ जाना स्थगित न किया। किरण को पत्र देकर वह लखनऊ रवाना हो गए।

[१२]

रायपुर से कुबेर के जाते ही रामजीवन का सिक्का जम गया । महेन्द्रनाथ तो नाम-मात्र के मैनेजर थे । सारा प्रबंध प्रभावती के हाथ से था । रामजीवन अब पूरा नवान्न था—जिमको चाहा, निकाल बाहर किया, जिमको चाहा, अपनी नौकरी में रख लिया । बेवकूफ तो वह परले सिंगे का था, फिर क्या था, चारों ओर लोंग ब्राहि-ब्राहि करने लगे । महेन्द्रनाथ से जिन लोगों ने जाकर शिकायत की, वे लोग प्रभावती द्वारा बरखास्त कर दिए गए ।

किंतु प्रभावती के लाख प्रयत्न करने पर भी महेन्द्रनाथ ने महेश को गोद न लिया । उन्होंने प्रभावती से स्पष्ट कह दिया कि मैं महेश तथा रामजीवन के चरित्र से सतुष्ट नहीं । अपनी ढाल गलती न देखकर प्रभा ने चारों ओर से रुपया बटोर-बटोरकर रामजीवन को देना शुरू कर दिया । पहले तो वह रज्जो से मिली रही, किंतु अपना पड़्यत्र विफल होता देख रज्जो का भी अवहेलना की दृष्टि से देखने लगी । रज्जो की मा सीधी-सादी स्त्री थी, उन्होंने एकआध बार महेन्द्रनाथ से इन बातों की शिकायत की ।

महेन्द्रनाथ कुछ सोचकर बोले—“क्या करोगी भाभी, इन भगडों से पडकर ? अब कितने दिन हमें-तुम्हें जीना है ?”

हेमप्रभा ने आँखों से आँसू भरकर कहा—“किंतु मेरी आँखों के सामने ही मेरी रज्जो का जीवन नष्ट हो गया । आजकल वह जैसी सूखकर काँटा हो रही है, उससे मालूम पड़ता है कि उसे भीतर-ही-भीतर बड़ा कष्ट है । क्या करूँ ?”

रज्जो चुप हो गई । हेमप्रभा बड़ी देर तक उसके सिर पर हाथ फेरती रही, बाद में वह उठकर चली ।

“सुनो मा !” रज्जो ने पुकारा ।

“क्या बेटी ?” हेमप्रभा ने वही से कहा ।

रज्जो चुप हो गई । हेमप्रभा ने कहा—“क्या चाहिए बेटी ! मैं ज़रा म्मान करने जा रही हूँ ।”

“अच्छा, लिख दो मा ।” कहकर रज्जो ने अपना मुँह चादर में लपेट लिया ।

(हेमप्रभा ने उसके शरीर पर हाथ रक्खा ।
) नारा शरीर ज्वर से जल रहा था ।



महेंद्रनाथ ने रामजीवन को बुलाकर कहा—“देखो जी ! चारों तरफ से तुम्हारी काफ़ी शिकायतें आ रही हैं । मैं इस तरह की बातें ज़रा कम पर्यन्त करता हूँ ।”

“जी-जी-जी, आपने क्या-क्या शिकायत सुनी है मेरी । मैं तो—
 तो .. ।”

वात काटकर महेंद्रनाथ ने कहा—“चुप रहो जी ! तुम निहायत कूटे आदमी हो । अगर तुम्हारी ये हरकतें बंद न हुईं, तो तुम्हें इसका फल भोगना पड़ेगा । तुमने परमो मनोहर का क्यों पिटवाया ? जवाब दो ।”

‘मैंने—मैंने किसी को कभी नहीं पिटवाया । वह माला—
 वह माला—क्या नामके—गुघुरवा होगा, गुघुरवा । उसी ने आपसे मेरी कूटी शिकायत की होगी । सरामर झूठ ! एकदम झूठ ! मैं साले को समझ लूँगा । एकदम झूठ बोलता है—क्या नामके—उल्लू ।’
 रामजीवन ने मिटपिटते हुए कहा ।

महेंद्रनाथ ने दरबान को पुकारकर कहा—“जाओ, रघुवर को हाज़िर करो।”

थोड़ी देर में रघुवर ने आकर बंदगी की। महेंद्रनाथ ने कहा—“क्यों जी रघुवर ! तुमसे इन्होंने क्या कहा था ? सच-सच बोलना।”

रघुवर ने बाक्तायदा सलाम अदा करते हुए कहा—“जी सरकार ! आपसे भला झूठ बोलने की हिम्मत किसे हो सकती है। रामजीवन बाबू ने मुझसे कहा था कि मनोहर को एक दिन पीटना होगा।”

‘झूठ ! एकदम झूठ ! मैं तो’

डॉक्टर महेंद्रनाथ ने कहा—‘चुप रहो जी ! दूसरे को अपनी बात कहने दो।’

रघुवर ने कहना प्रारंभ किया—“मुझे इन्होंने १००) देने का वादा किया। मैंने कहा— मैं बाल-बच्चेवाला आदमी, किसी बेकसूर आदमी को नहीं पीटूँगा।’ इस पर ताव खाकर इन्होंने कहा— ‘जानता नहीं साले ! मिट्टी में मिलवा दूँगा। किसके भरोसे भूला है तू। तुझे नहीं मालूम कि . . .’ कहकर रघुवर चुप हो गया।

महेंद्रनाथ ने पूछा—“क्या कहा था, कहो।”

“सरकार, ऐसी बात मैं मुँह से नहीं निकालना चाहता।” कहकर रघुवर चुप रहा।

“बोलो, बोलो। सब बातें ठीक-ठीक कहो।” महेंद्रनाथ ने आज्ञा देते हुए कहा।

थोड़ी देर रुककर रघुवर ने कहा—‘इन्होंने कहा था कि सरकार के न रहने के बाद मैं ही रायपुर का मालिक बनूँगा। रानी थिरिया तो चंद दिन की मेहमान है।’

रामजीवन उछलकर खड़ा हो गया, और चिल्लाकर बोला—“झूठ, एकदम झूठ ! मैं तुम्हें नोकरी से आज ही अलग कर दूँगा। और, नूने—नूने मुझसे नहीं कहा कि कि कि .कि ..”

सूखी हँसी हँसकर महेंद्रनाथ ने कहा—“क्या कहा था राम-जीवन ! बताना तो जरा ।”

रामजीवन का साहस बढ़ा । उसने कहा—“इसने—इस माले ने मुझसे कहा था कि छोटी रानी मुझ पर बढ़ी मेहरमान हैं । क्या नामके—सरकार से भी बढ़कर मुझे माननी हैं । नमकहराम कहीं का । ये माला रोज़ रात को जीजी से घटो हँस-हँसकर , ”

महेंद्रनाथ की आँखें लाल हो गईं । वह चिल्लाकर बोले—“निकल जाओ, दोनो यहाँ से इसी वक्त । हरामज़ादो ”

रामजीवन फिर पर पैर रखकर भागा । रघुवर धीरे से वहाँ से हट गया ।

महेंद्रनाथ का चेहरा क्रोध से लाल था । थोड़ी देर में हेमप्रभा ने आकर कहा - “चुप क्यों हो महेंद्र ! क्या तबियत ठीक नहीं ?”

महेंद्रनाथ सँभले । बोले—“नहीं भाभी ! यो ही ज़रा तबियत भारी हो गई थी । कहो, रज्जो का क्या हाल है ?”

“इस समय उसे काफी ज्वर है । कुवेरचट को आज ही पत्र लिखवा दो ।” हेमप्रभा ने कहा ।

“फिर रज्जो ..”

“वह राज़ी है । उसे कोई आपत्ति नहीं ।” हेमप्रभा ने कहा ।

“अच्छी बात है ।” कहकर महेंद्रनाथ चुप हो गए ।

हेमप्रभा चली गई । महेंद्रनाथ सोचने लगे, कितना पतन हो गया है इस घर का । इस सबका कारण केवल एक मेरी कम-ज़ोरी है । यदि मैं प्रारम्भ से ही व्यवस्था ठीक रखता, तो आज मेरी तथा इस घर की यह दशा न होती । हाय ! आज भाई साहब के न रहने से सभी कुछ तो इधर का उधर हो गया । और प्रभा ! तूने इस कुल में अमिट दाग लगा दिया । किंतु किया क्या जाय ? कुवेर ? उन्हें भी तो व्यर्थ के प्रभाव में पड़कर मैंने यहाँ

से अपमान के साथ अलग कर दिया। प्रभो! तुम्हीं इस वश की लाज रखना।

उसी दिन महेंद्रनाथ ने रज्जो की बीमारी की सूचना कुबेरचंद को दे दी। उन्हें यह विश्वास था कि कुबेरचंद बीमारी की सूचना पाकर अवश्य आएंगे।

शाम को प्रभा ने आकर कहा—“क्यों जी, तुमने रामजीवन को क्यों डाँट दिया? वह बेचारा क्या हमारे यहाँ डाँट खाने आया है।”

महेंद्रनाथ चुप बैठे रहे। वह उनकी ओर न देखना ही चाहते थे और न उससे बात करना ही। प्रभा ने उन्हें चुप देखकर कहा—“यदि तुम्हें उसे न रखना हो, तो सीधी तरह कह दो। वह लौट जायगा।”

महेंद्रनाथ को कुछ क्रोध आ गया। उनके मुँह से निकला—“तो उसे रोकता कौन है? क्यों नहीं चला जाता? मैं क्या उसे धुलाने गया था?”

प्रभा जल-भुन गई। उसने तीव्र स्वर से कहा—“कोई क्या तुम्हारी रोटियों का मोहताज है। आप तो किसी की इज्जत-आवरु नहीं समझते। इस घर में जो भी आगुगा, अपमानित होकर जायगा। यह तो इस घर की देहरी का प्रभाव है।”

महेंद्रनाथ की आँखें गुस्से से लाल हो रही थीं, किंतु वह चुप रहे। सहनशीलता उनके स्वभाव में ईश्वर ने प्रचुर मात्रा में दी थी।

अपनी बात का उत्तर न पाकर प्रभा और खुल चली। बोली—“न-जाने क्यों लोग इस घर में टुकड़े तोड़ने पहुँच जाते हैं। इस घर के आदमी क्या हैं, मानो बाइसगाय के अवतार हैं। अपना अपमान कराना हो, तो इस घर में रहे।”

महेंद्रनाथ बोल उठे—“तो तुम भी इस घर को क्यों नहीं छोड़

देतीं। जो भला हो, उसके साथ चली जाओ। मुझे भी छुटी मिले।”

प्रभा के लिये अब अधिक सुनना असह्य था। उसने चिल्लाकर कहा—“क्या कहा, फिर तो कहना ! मैं तुम्हें भारू हो रही हूँ। अच्छा, यह तो मुझे आज ही मालूम हुआ . ”

बात काटकर महेन्द्र ने कहा—“और मुझे भी आज ही मालूम हुआ है।”

पैर पटककर प्रभा ने कहा—“बस, चुप रहिए। यदि नहीं रखना है, तो मैं आज ही इस घर को त्याग दूँगी। ज्यादा अपमान करने की जरूरत नहीं।”

महेन्द्र फौरन् बोल उठे—“हाँ, जाओ। मुझे भी अब कभी तुम्हारी जरूरत न पड़ेगी।”

प्रभा चल दी। दरवाजे पर पहुँचने पर महेन्द्र ने चिल्लाकर कहा—“और साथ में रघुवर को भी लेती जाना।”

पता नहीं, प्रभा ने यह सुना या नहीं।

जिस समय कुबेरचढ़ गाड़ी पर सवार होकर नदी-तट से रायपुर की ओर रवाना हुए, उन्हें सामने से एक गाड़ी आती हुई दिखाई दी। उन्होंने समझा, शायद महेंद्रनाथ ने उनके लिये सवारी भेजी हो, अतएव उन्होंने गाड़ी रोक दी, और दूसरी गाड़ीवाले को हाथ उठाकर रोकने का इशारा किया। गाड़ी रुक गई। कुबेर ने गाड़ी के निकट पहुँचकर देखा कि रामजीवन महाशय गाड़ी से लिर निकालकर भाँक रहे हैं।

कुबेर ने समझा, शायद रामजीवन कहीं बाहर जा रहा हो। उन्हें देखकर रामजीवन गाड़ी से उतर पड़ा, और बोला—“कहिण भाई साहब ! क्या फिर रायपुर आ गए ?”

कुबेर के हृदय में एक बार फिर उसके प्रति घृणा उत्पन्न हुई। वह बोले—“यो ही ज़रा रज्जो को देखने आ गया हूँ। तुम कहाँ चले ?”

‘मैं—मैं क्या यहाँ बसने आया था ? भला पूछो, मैं कौन हूँ। मैं तो—मैं तो—अपनी तबियत का राजा हूँ। जी नहीं लगा, चल दिया। क्यों न भाई साहब ? ठीक कह रहा हूँ न ?” कहकर रामजीवन हँस पड़ा।

कुबेर ने सोचा, अवश्य कोई घटना हुई है। फिर बोले—“और कौन है तुम्हारे साथ ?”

रामजीवन बोला—“हम सभी तो हैं। और—और प्रभा जीजी भी तो ...” कहते-कहते वह रुक गया।

कुबेर ने सोचा अब बात करना ठीक नहीं। वहीं चलकर रहस्य खुलेगा। कोई गहरी बात मालूम पड़ रही है।

रामजीवन फिर बोला—“अच्छा, चलता हूँ। नमस्ते भाई साहब।”

“नमस्ते कहकर” कुबेर अपनी गाड़ी पर चढ़ गए। दोनों गाड़ियाँ चल दीं।

रायपुर पहुँचने पर उन्हें काफ़ी मज़ाटा दिम्बाई पड़ा। वह सीधे महेंद्रनाथ के पास जा पहुँचे। महेंद्रनाथ इस समय बड़े चिंतित भाव से आराम-कुर्सी पर लेटे थे। कुबेर को देखकर उठ खड़े हुए।

“क्या हाल है रज्जों का?” बिना किसी प्रकार की भूमिका बंधे हुए ही कुबेर ने पूछा।

“हालत ठीक नहीं।” महेंद्रनाथ ने धीरे से कहा।

कुबेर चुप रहे। महेंद्रनाथ ने कहा—“कुछ सुमेरचंद का पता चला?”

“हूँ।” कहकर कुबेर चुप रहे।

महेंद्रनाथ कहते गए—“क्या घर वापस आ गए?”

“नहीं।”

“कानपुर में है?”

“नहीं। लखनऊ में कदाचिन् रहते हैं।”

“आप लखनऊ गए थे?”

“यहीं। जाने की इच्छा कर रहा था, किंतु इधर चला आया।”

महेंद्रनाथ चुप हो गए। उनके हृदय में यह धारणा और भी दृढ़ हो गई कि कुबेरचंद सुमेर का पता नहीं लगाना चाहते।

फिर कुछ बातचीत नहीं हुई। कुबेरचंद वहाँ से उठकर रज्जों के

कमरे में गए। रज्जो ने उन्हें देखकर उठने की चेष्टा की, किंतु उठ न सकी।

“लेटी रहो बेटी। अब तुम्हारा कैसा जी है?” कुबेरचंद ने कहा।

“अच्छी हूँ।” रज्जो ने लज्जा से दूसरी ओर मुँह फेरकर कहा। कुबेरचंद चुप रहे। रज्जो भी शांत लेटी रही।

“सुमेर का पता चल गया है। कानपुर चलीगी बेटी?” कुबेर ने गंभीरता-पूर्वक कहा।

रज्जो चुप रही। कुबेर ने क्षण-भर चुप रहकर कहा—“किरण दिन-रात तुम्हारी याद करती है। कानपुर चलीगी? मैं तुम्हें ले जाने के लिये ही आया हूँ।”

रज्जो के नेत्र धीरे-धीरे सजल हो रहे थे। कुबेर ने कहा—“अब तुम धाराम करो बेटी। मैं अभी ठहरूँगा। फिर तुमसे बात करूँगा।”

कुबेर उठकर बाहर आ गए।

दूसरे दिन महेंद्रनाथ ने उनसे कहा—“अब सुमेरचंद का ढूँढ़कर लाना ही पड़ेगा। यदि आपको इस कार्य में कठिनाई जान पड़े, तो मैं भी आपके साथ चल सकता हूँ। इस कार्य में देर करने से मुझे घोर विपत्ति का सामना करना पड़ेगा।”

कुबेर ने क्षण-भर चुप रहकर कहा—“बात तो आप ठीक कहते हैं महेंद्रनाथजी। किंतु मुझमें मदा से साहस की कमी रही है, यदि आप चल सकें, तो संभव है, सफलता मिल जाय।”

“तो मुझे चलने में कोई आपत्ति नहीं। किंतु इसमें शीघ्रता करनी चाहिए।” महेंद्रनाथ बोल उठे।

यत में दोनों का लखनऊ जाना निश्चित हो गया।

ग्राम को महेंद्रनाथ ने रज्जो से जाकर कहा—“हम लोग सुमेरचंद को लाने के लिये लखनऊ जा रहे हैं बेटी। शीघ्र ही लौटेंगे।”

रजो ने थोड़ी देर चुप रहकर कहा—“आप क्यों इतना कष्ट कर रहे हैं चाचाजी ! जिसे आना होगा, अपने आप आ जायगा । आप लोग ”

बात काटकर महेन्द्रनाथ ने कहा—“मेरे लिये तो अब तुम्हीं हो । मैं तो तुम लोगों को सुखी देखकर ही मरना चाहता हूँ ।”

कहते-कहते उनके नेत्रों में आँसू आ गए । रजो भी रो पड़ी । उसने आँसू से आँसू पोछते हुए कहा—“आप मेरे लिये क्यों दुखी हो रहे हैं चाचाजी ! मैं बहुत सुखी हूँ । आप अपने हृदय में . . .”

महेन्द्रनाथ ने कहा—“अब तुम आराम करो । यदि ईश्वर चाहेगा, तो सब कुछ अच्छा ही होगा ।”

उनके जाने के पहले एक दिन रात्रि में हेमप्रभा ने उनसे आग्रह पूछा—“क्यों महेन्द्र ! तुमने वह को क्यों मा के घर भेज दिया ?”

महेन्द्रनाथ चौंक पड़े । आज इतने दिन बाद भाभी ने यह प्रश्न कैसे किया ? क्या उनके हृदय में किसी प्रकार का संदेह पैदा हुआ है ?

उन्हें चुप देखकर हेमप्रभा ने कहा—“मुझसे किसी प्रकार की बात छिपाना तुम्हारे लिये अच्छा नहीं । मैं तो प्रारंभ ही से तुम्हें सुगयी देखने की इच्छुक रही हूँ महेन्द्र ।”

महेन्द्र नीचा मिर किए बैठे रहे, फिर बोले—“वह हमारे यहाँ रहने योग्य नहीं है भाभी ! उसने हमारे परिवार को कलंकित किया है । इस विषय में चुप रहना ही अच्छा है ।”

हेमप्रभा ने कहा—“किंतु बिना किसी दृढ़ प्रमाण के किसी के चरित्र पर संदेह करना तो ठीक नहीं है महेन्द्र । प्रभा ऐसी स्त्री नहीं है ।”

महेंद्र के चेहरे पर थोड़ा क्रोध झलकने लगा । उन्होंने एक श्वास लेकर कहा—“वह नीच स्त्री है । मुझसे अधिक उसके विषय में दूसरा नहीं जान सकता । मैं तुमसे प्रार्थना करता हूँ भाभी ! इस विषय में अधिक बात करके मुझे दुखी न करो ।”

हेमप्रभा चुप हो गई । बात पलटने की नीयत से उसने कहा—“सुना है, सुमेर का चरित्र बहुत गिर गया है । यदि उसका सुधार कर सको, तो एक बार फिर से इस धर की राज्य-श्री लौट सकती है ।”

महेंद्र ने ठंडी साँस लेकर कहा—“किंतु कुवेर पर मेरा अधिक विश्वास नहीं, इसीलिये तो साथ जा रहा हूँ । न-जाने क्यों मेरा मन उन पर अधिक विश्वास करने को नहीं चाहता ।”

हेमप्रभा ने कहा—“किंतु इसका क्या कारण हो सकता है । हम लोगो ने तो कोई ध्वास दुश्मनी उनसे की नहीं ।”

महेंद्रनाथ बोल न सके । वह जानते थे, इस घर में कई थार उनका अपमान किया गया है । प्रकट में बोले—“क्यों नहीं । एक बार जब वह दीदी का पत्र लेकर यहाँ आए थे, तो बिना किसी प्रकार की सहायता के ही उन्हें यहाँ से डाल दिया गया था । अपने यहाँ से उन्हें हटाने में भी तो उनका काफ़ी अपमान किया गया ।”

हेमप्रभा कुछ मोचकर बोली—“तो उन्हें फिर से यहाँ रख लिया जाय । इससे तो शायद वह अपने पुराने अपमान को भूल जायँ ।”

महेंद्रनाथ ने कहा—“यदि ऐसा हो जाय, तो अच्छा ही है । मैं इस विषय में उनसे बात करूँगा ।”

दूसरे दिन सवेरे बातचीत के सिलसिले में महेंद्रनाथ ने यह प्रस्ताव उनके सामने रक्खा । कुवेरचंद्र हैमकर चुप हो गए ।

राज्यवर्ष उनकी ओर देखकर महेंद्रनाथ ने कहा—“रजो की मा आपका बहुत कुछ उपकार करना चाहती है । यह जानकर कि आप कष्ट में होंगे, वह आपको फिर यहाँ बुला लेना चाहती है ।”

कुवेरचंद हँसकर बोले—“मैं आपसे अधिक सुखी हूँ महेंद्रनाथ-जी ! बात यह है कि हमारे और आपके सुख की परिभाषा में काफी अंतर है ।”

महेंद्रनाथ कुछ समझे नहीं । बोले—“अंतर की क्या बात है ?”

“अंतर यह है कि आप लोग जिसे सुख समझते हैं, वह मेरी दृष्टि में साधारण वस्तु है । वास्तविक सुख तो दूसरी ही चीज़ है । उससे आप लोग बहुत दूर हैं ।” कुवेर ने हँसकर कहा ।

“हमारे और आपके सुख में अंतर क्यों है ?” महेंद्रनाथ ने कुतूहल के साथ पूछा ।

“बात यह है कि आप लोग वास्तव में कुवेर हैं, और मैं हूँ केवल नाम का कुवेर ।” कहकर कुवेर ठहाका मारकर हँस पड़े ।

महेंद्रनाथ उनके मुँह की ओर देखते रह गए । कुवेरचंद ने कहा—“अच्छा, रहने दीजिए ये बातें । अब चलने में ढेर न कीजिए । आज यहाँ से अवश्य रवाना हो जाना है ।”

महेंद्रनाथ उनके मुँह की ओर देखते रह गए । क्षण-भर बाद बोले—“मुझे खेद है, आप मुझमें और अपने में इतना अंतर समझते हैं ।”

कुवेर फिर हँसे । बोले—“मैं तो कोई अंतर नहीं समझता, किन्तु आप लोगों को ईश्वर ने जिन श्रेणी में रक्खा है, उसमें रहकर प्रायः आप लोग अपने और दूसरों से बहुत भारी अंतर समझने लगते हैं । आप लोगों के लिये दूसरों का जीवन खिलवाड़-सा हो जाता है । आप बुरा तो नहीं मान रहे हैं, जो मैं कह रहा हूँ ?”

महेंद्रनाथ कुछ खिमियाए-से होकर बोले—“नहीं-नहीं, कुवेरचंद-जी ! मुझे तो आपकी बातों में बड़ा आनंद आ रहा है । मुझे अपनी टीका कभी बुरी नहीं लगी । आप कहते जाइए ।”

अब कुवेर जरा गंभीर हो उठे । उन्हें इससे अच्छा अवसर कहने

का भला और कब मिल सकता था। उन्होंने कहा—“बड़े आदमियों के हृदय नहीं होता। धन ही उनका धर्म है। समार के अन्य निर्धन व्यक्ति उनकी क्रीड़ा की सामग्री के समान हैं। वे अपने धन का किसी व्यक्ति के सम्मान से भी अधिक ऊँचा समझते हैं। धनियों को मैं अधिक श्रद्धा की दृष्टि से नहीं देखता।”

महेन्द्रनाथ धैर्य-पूर्वक सब कुछ सुनते रहे। अंत में बोले—“आप ठीक कह रहे हैं कुबेरचंदजी। मैं धन का ही अभिशाप अपने ऊपर ओढ़े हुए हूँ। आप सत्य कह रहे हैं।”

कुबेर बहुत कुछ हलके हो चुके थे। वह महेन्द्रनाथ को और अधिक कुछ नहीं सुनाना चाहते थे। बोले—“निश्चय ही आपको धन का ही अभिशाप भुगतना पड़ रहा है। आज यदि आप धन तथा ऐश्वर्य के मग्न में न आकर अपनी बहन पर रक्षा का हाथ रखते, तो आपको इन विपत्तियों का सामना न करना पड़ता। मैं तो बिना कहे नहीं रह सकता कि आगा को पतन के खड्ड में गिराने का श्रेय आपके ही परिवार को है। क्या आप अपनी साधारण-सी सहायता के सहारे उसका उद्धार नहीं कर सकते थे। रज्जो को आज उसी का तो फल भुगतना पड़ रहा है।”

महेन्द्रनाथ चुप थे। कुबेर कहते गए—“आपने सदा अपनी समझ से दूसरों को बुद्धि-हीन तथा अपने हाथ का खिलौना समझा है। आप लोगों की इसी नीति ने आपके सारे घर को श्री-हीन कर दिया है। तुरा न मानिएगा महेन्द्रनाथजी।”

कुबेर चुप हो गए। महेन्द्रनाथ नीचा सिर किए गंभीर मुद्रा में थे। कुबेरचंद ने उनका ध्यान भंग करते हुए कहा—“उठिए, अब चलने का समय हो गया है।”

महेन्द्रनाथ ने कुबेरचंद का हाथ पकड़ लिया, और बोले—“मैं यदा दुखी हूँ कुबेरचंदजी। आज आपकी बातों ने मेरे हृदय के

अंधकार को बहुत कुछ दूर कर दिया है। धन ही सारे विनाश की जड़ है। हम लोगों ने आपके प्रति सदैव अनुदारता का परिचय दिया है। आशा है, आप क्षमा करेंगे।”

महेंद्रनाथ ने कुबेर के पैर पकड़ लिए।

“आप क्या कर रहे हैं ? मैं तो एक अत्यंत माधारण व्यक्ति हूँ। आप नहीं जानते, मैं कितना बड़ा पापी हूँ।” कहते हुए कुबेरचंद्र ने अपने पैर हटा लिए।

उसी दिन शाम को दोनों ही लखनऊ रवाना हो गए।

[१४]

दूसरे दिन सबेरे सुमेरचन्द्र देवेंद्र के घर पहुँच गए । नौकर ने उन्हें बैठक में बैठाकर आशा को सूचना दी ।

आशा लिखने को तो लिख बैठी, किंतु सुमेर को आया देख एक बार उसका सारा शरीर काँप उठा । किंतु अब समय न था, तीर तरकश से निकल चुका था । उसने नौकर को बुलाकर कहा—“रामू ! मेरा एक काम कर देगा ?”

रामू मालकिन का बड़ा भक्त था । बाबू से उसकी ज्यादा न पटती थी । एक बार दूध चुराकर पी जाने पर मालिक ने उसकी धौल-धप्पा से पूजा भी कर दी थी, किंतु मालकिन ने उसे चुपचाप दो रुपए इनाम के देकर सावना प्रदान की थी ।

वह झट बोल उठा—‘क्या हुकुम है मालकिन ?’

आशा को उस पर पूर्ण विश्वास था । वह बोली—“वह बाबू साहब, जो नीचे कमरे में बैठे हैं, उन्हें यहाँ बुला ला । देव, बाबूजी से इसका जिक्र न करना । दरवाज़ा अंदर से बंद कर लेना ।”

रामू चला गया । आशा की सारी देह काँपी जा रही थी । उसने झटपट धोती बदली, और कमरे में जाकर एक ओर खड़ी हो गई ।

रामू सुमेर को लेकर कमरे में आया । पहले तो सुमेर कुछ झिझके, किंतु सामने आशा को देखकर उनका सारा बदन मिहर उठा । उनके मुँह से निकल पड़ा—“कौन ? आशा ! तुम !”

आशा टाँडकर उनके पैरों पर गिर पड़ी । सुमेर बोल उठे—

“आशा ! तुम ॥ क्या मैं स्वप्न देख रहा हूँ ? तुम यहाँ कैसे ?
क्या-क्या • • • ”

आशा बोल उठी—“हाँ, मैं ही देवेंद्र की स्त्री हूँ । क्या विश्वास नहीं होता ? ”

सुमेर कि-कर्तव्य-विमूढ़ की तरह खड़े रहे । क्षण-भर चाट उनके मुँह से निकला—“आशा ! तुम तो ऐसी न थीं । तुमने मुझे अच्छा धोखा दिया । अब क्या कहना चाहती हो ? क्या देवेंद्र से तबियत भर गई ? ”

आशा रो रही थी । सुमेर ने फिर कहा—“क्या कहना चाहती हो ? मैं अधिक समय तक इस दशा में नहीं खड़ा रह सकता, बोलो । ”

आशा का मुँह खुला । उसने आँचल में आँसू पोछते हुए कहा—
“मेरे जीवन की सबसे बड़ी कमज़ोरी तुम हो सुमेर ! क्या मेरे पास इसके सिवा और कोई उपाय था ? ”

सुमेर ने क्षण भर चुप रहकर कहा—“किंतु अब समय नहीं रहा । मैं और सारा ससार तुम्हें मरा हुआ समझता है । क्या अच्छा होता, यदि तुम इसकी अपेक्षा जाह्नवी के गर्भ में समा गई होती । किंतु खेद ! ”

आशा निरंतर रो रही थी । सुमेर ने फिर कहा—“तुम मेरी प्रतीक्षा कर सकती थीं । मैं तुम्हारे लिये सर्वस्व छोड़कर लौटा था, किंतु • • ”

सुमेर चुप हो गए । आशा ने हिचकियाँ लेते हुए कहा—“तुम्हारे कल्याण के लिये मेरे लिये इसके अतिगिक्त और कोई मार्ग न था । मैं कलकिनी हूँ, किंतु आत्महत्या करना मेरे साहस के बाहर की बात है । मैं मर न सकी । ”

सुमेर ने गभीरता से कहा—“तभी तो उस पतित की उपपत्ती

चनने का लोभ तुमसे न त्यागा गया । देवेंद्र से तो खूब प्रेम करती होगी ? क्यों आशा ?”

आशा चुप थी । प्राय भावों का आविर्भाव मनुष्य को अपनी परिस्थिति स्पष्ट करने में अयोग्य बना देता है । मनुष्य कहना कुछ चाहता है, किंतु जितना ही वह अपने को छुड़ाना चाहता है, प्राय उतना ही उसमें फँसता चला जाता है ।

उसे चुप देखकर सुमेर ने कहा—“और कुछ कहना है ?”

आशा सुमेर के पैरों पर गिर पड़ी, किंतु सुमेर न डिगे । उन्होंने उसे उठाकर अलग कर दिया, और कहा—“अब समय नहीं है । मुझे जाने दो ।”

वह उठ खड़ा हुआ । आशा ने उसके निकट आकर कहा—“मैं अपराधिनी हूँ । क्या मुझे क्षमा न कर सकोगे सुमेर ?”

सुमेर ने जाने की चेष्टा करते हुए कहा—“किंतु तुम्हें अब आवश्यकता ही क्या है ? दिन तो मजे से कट रहे हैं ।”

“क्या मेरे पास कुछ देर के लिये भी ठहरना आपके लिये कठिन है ? क्या मैं अब इतनी पराई हो गई हूँ सुमेर ?” कहते हुए उसने सुमेर का हाथ पकड़ लिया ।

सुमेर ने हाथ छुड़ाया नहीं । वह खड़ा रहा । आशा ने फिर कहा—“तुम मुझे भरपूर ढूँढ़ सकते हो, किंतु इस प्रकार नहीं । मैं एक बार जी बोलकर अपना अपराध तुम्हारे सामने रख देना चाहती हूँ । मैं तुम्हारे योग्य नहीं, किंतु अपने अपराधों को कहकर उनकी क्षमा मांगे बिना मुझे जीवन-भर शांति न मिल सकेगी, क्या मेरी सुन सकोगे सुमेर ?”

क्षण-भर चुप रहकर सुमेर ने कहा—“किंतु मुझे भी सोचने का अवकाश चाहिए । मैं अब यहाँ न ठहर सकूँगा । यदि कुछ स्थिर कर सका, तो फिर मिल सकूँगा, नहीं तो वस ।”

सुमेर कमरे के बाहर हो गया। आशा कुछ देर तक खड़ी रही, फिर एक श्वाभ लेकर पलंग पर जाकर लेट रही।

रामू ने आकर कहा—“मालकिन ! नए बाबू साहब, जो अभी आए थे, तुम्हें नीचे बुला रहे हैं।”

आशा फौरन नीचे पहुँची। सुमेर बैठक में कुर्सी पर सिर मुकाए बैठा था। आशा चुपचाप पास जाकर खड़ी हो गई।

“किसी समय मेरे मकान में आकर मुझसे मिल सकती हो ? इस स्थान को मैं निरापद नहीं समझता।” सुमेर ने कहा।

“किन्तु मैं कैसे वहाँ जा सकूँगी ? मेरे लिये तो यह मकान छोड़कर कहीं जाना मृत्यु से भी भयकर है।” आशा धीरे से बोली।

“हूँ।” कहकर सुमेर खड़े हो गए। आशा ने फिर कहा—“यदि आप फिर आ सकें, तो मैं आपके साथ चल सकूँगी।”

“चेष्टा करूँगा।” कहकर सुमेर चल दिए।

आशा पलंग पर जाकर लेट रही। वह जितना ही अपने मन को काबू में रखने की चेष्टा करती थी, उतना ही उसका हृदय बाहर निकला पड़ता था। उसने सोचा, अब क्या उपाय है। किस मार्ग पर चलना चाहती थी, और किधर जा निकली देवेन्द्र ! क्या वह मेरे पैरों पड़ने गया था। मैं ही तो जान-बूझकर उसके गले पड़ी। अब ! क्या उपाय है। और सुमेर ! मेरे देवता। क्या तुम छोड़े जा सकोगे। तुम मेरे लिये सब कुछ छोड़कर आए हो। हाय मेरी परिस्थिति !

नाम तक उसकी यही दशा रही। देवेन्द्र आया। आशा के पास जाकर उसने कहा—“कैसी तबियत है आशा ? क्या ज्वर आ गया ?”

आशा को न-जाने क्यों देवेन्द्र का आना अच्छा न लगा। वह चुपचाप पड़ी रहना चाहती थी। उसने कहा—“आज सबेरे

से ही तबियत ठीक नहीं मालूम पड़ती। मैं कुछ समय के लिये सोना चाहती हूँ।”

उसके सिर पर हाथ फेरते हुए देवेंद्र ने कहा—“कुछ खाओगी नहीं? दूध पी लो।”

“नहीं।” कहकर आशा ने आँखें मूँद लीं। देवेंद्र उठकर बाहर चला गया।

थोड़ी देर में डरते-डरते रामू ने आकर आशा के कान के पास कहा—“बाबूजी! सबेरेवाले बाबूजी आए हैं। हमारे बाबूजी से बैठक में बैठे हुए बातें कर रहे हैं।”

“आशा चौककर उठ बैठी। उसने सोचा, सुमेर उनसे मिलने क्यों आए? हे भगवान्! कहीं और कुछ तो नहीं होनेवाला है। यह उनसे मिलने क्यों आए।”

उससे लेटे न रहा गया। वह उठकर नीचे पहुँची। परदे की ओट से झाँककर जो कुछ उसने देखा, उससे उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

उसने देखा, कुबेर तथा उसके मामा महेंद्रनाथ देवेंद्र से बैठे हुए बातें कर रहे हैं। वह वहीं खड़ी रही।

देवेंद्र कह रहा था—“हैं तो वह लखनऊ में ही, लेकिन इधर कई रोज़ से मेरी भेंट नहीं हुई।”

कुबेर ने कहा—“तुम्हें उसका घर तो मालूम ही होगा।”

“मुझे तो नहीं मालूम, मेरे एक मित्र घोष बाबू हैं, उन्हें उनके घर का पता मालूम है। मैं कल आपसे उनकी भेंट करा दूँगा। आज आप मेरे यहाँ ही विश्राम कीजिए।”

महेंद्रनाथ ने कहा—“आपकी यही कृपा होगी। रज्जो की हालत दिन-पर-दिन गिरती ही जा रही है, यदि शीघ्र ही उनका पता न चला, तो सर्वनाश की संभावना है।”

“मैं पूरी चेष्टा करूँगा। और मिलने पर उन पर जोर डालूँगा कि वह भले मनुष्यों की तरह आपके साथ चले जायें। किसी भले आदमी की लड़की का जीवन नष्ट कर देना क्या अच्छी बात है। फिर सुमेर तो बहुत भला लड़का है।” देवेंद्र ने परम आत्मीयता दिखलाते हुए कहा।

“हाँ, किन्तु भाग्य में लिखा हुआ कौन मेट सकता है। अब भी यदि उनकी बुद्धि ठिकाने लग जाय, तो दोनों घरों का सर्वनाश रुक सकता है।” महेंद्रनाथ ने एक साँस लेकर कहा।

“देखिए, कल मिलने से पता चलेगा, अब विश्राम कीजिए। रामू! आप लोगों के विश्राम का प्रबंध कर।” देवेंद्र ने उठते हुए कहा।

कुवेर को देवेंद्र में इस प्रकार का आशावादी सुधार देखकर आश्चर्य था। उसके चले जाने पर महेंद्र ने पूछा—“क्यों भाई कुवेरचढ़जी! यह है कौन महाशय?”

कुवेर ने उत्तर दिया—“यह वही महाशय हूँ, जिनके चंगुल से आशा को छुड़ाने के लिये उस महाभयकर रात्रि में सुभे आपके पास जाना पड़ा था।”

महेंद्रनाथ ने एक साँस ली, और चुप हो रहे।

कुवेरचढ़ ने भी एक साँस ली, और आशा की स्मृति को फिर से हृदय में दफना दिया।

उन्हें क्या मालूम था कि आशा भी पास खड़ी हुई थी, और वह भी एक दर्द-भरी श्वास लेकर वहाँ से चली गई।



रात्रि में देवेंद्र ने आशा से कहा—“कुवेर आएँ हैं।”

“हूँ ।” कहकर आशा मोने का चहाना करने लगी ।

देवेंद्र ने फिर कहा—“रज्जो मरणायुक्त अवस्था में है, अतएव मुझे को मनाकर ले जाने के लिये ही आणू हैं ।”

आशा उस समय खुरगटे ले रही थी, शायद देवेंद्र से छुटी पाने के लिये ।



आशा के लिये फिर कठिन परीक्षा आ उपस्थित हुई। जिस बात को लेकर उसने कुबेर का घर त्यागा था, फिर वही समस्या उसके सामने थी। अभी थोड़ी देर पहले उसने अपने को फिर सुमेर के साथ ले पटकने का दृढ़ विचार कर लिया था। उसने यह निर्णय कर लिया था कि यदि सुमेर ने मुझे शरण दी, तो मैं देवेंद्र को त्याग दूँगी, किंतु कुबेर ने वहाँ पहुँचकर फिर उसके हृदय में हाहाकार उत्पन्न कर दिया। उसे यह दृढ़ विश्वास था कि मैं सुमेर को अब लौट जाने के लिये कभी राजी न कर सकूँगी। हाय ! आज यदि उनसे भेंट न हुई होती, तो कितना अच्छा होता ? वह बड़ी आत्मानवी से रायपुर चले जाते, किंतु अब ? मैं क्यों उनके कल्याण-मार्ग का रोड़ा बनकर उत्पन्न हुई ? अब क्या हो ? कैसे उन्हें रायपुर भेजकर उनका सर्वनाश रोका जाय ? मैं कभी उनका अहित न होने दूँगी। यदि मैं उन्हें कोरा उत्तर दे दूँ, तो ? किंतु मेरा हृदय क्या ऐसा कहने देगा ? क्या करूँ ?

आशा रात-भर करवटें लेती रही। वह कुछ भी निर्णय न कर सकी। तड़के ही उसे देवेंद्र ने आकर उठाया—

“तयियत कैसी है अब तुम्हारी ?” उसने पूछा।

“ठीक है।” आशा ने लेटे-ही-लेटे कहा।

“मैं जरा सुमेर की तलाश में उन लोगों के साथ जा रहा हूँ। जायद देर से लौटना हो। क्या डॉक्टर को साथ लेता आऊँ।” देवेंद्र ने पूछा।

“नहीं। मेरी तबियत अब बिलकुल ठीक है। आप जाइए।”
आशा ने जवाब दिया।

देवेंद्र के चले जाने पर वह उठी। हाथ-मुँह धोकर उसने दूध पिया, और फिर लेट गई। उसके पास सिवा सोच और चिंता के और कोई अन्य कार्य ही न था।

“मे एक बार फिर उन्हें बचाने की चेष्टा करूँगी। यदि उन्होंने न माना, तो इस बार आत्महत्या ही मेरा अंतिम मार्ग होगा।”
आशा बड़बड़ा उठी।

रामू ने आकर उसका ध्यान भंग किया। बोला—“लीजिए बहूजी! आपका पत्र।”

आशा ने चौंककर पत्र ले लिया। पत्र में लिखा था—

“प्रिय आशा,—

बहुत कुछ सोचने-विचारने के पश्चात् मैंने तुम्हें छमा कर दिया है। यदि हो सके, तो आज ही रात को घर छोड़ने के लिये तैयार रहना। मैं गली के बाहर तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगा।

तुम्हारा सुमेर।”

आशा ने एक श्वास ली, और कहा—“कौन तुम्हें दे गया है यह पत्र रामू?”

“खुद बाबूजी ने आकर दिया, और चले गए।” रामू धीरे से बोला।

“तूने उन्हें रोका नहीं?” आशा ने पूछा।

“मैंने तो बहुत कहा, लेकिन वह ठहरे ही नहीं।” रामू ने जवाब दिया।

“आशा चुप हो गई। उसने सोचा, अब क्या होगा? हाय! क्या कुबेर दादा को फिर निराश होकर लौटना पड़ेगा? आखिर उन्होंने मेरा क्या बिगाड़ा है। उनके उपकारों का बदला क्या

जीवन-भर इसी प्रकार चुकाना पड़ेगा ? किन्तु — किन्तु अब क्या ? वह दो-चार रोज़ पहले क्यों न आए । अब ”

दोपहर को देवेन्द्र, कुवेर तथा महेन्द्रनाथ लोंटे । आशा ने देवेन्द्र से पूछा — “सुमेर से भेंट हुई ?”

“हाँ । लेकिन उसने तो जाने से साफ़ इन्कार कर दिया । हम लोगो ने बहुत सिर पीटा, किन्तु उसका कोई भी तो प्रभाव न पड़ा ।” देवेन्द्र ने जवाब दिया ।

“अब क्या होगा ?” आशा पूछ बैठी ।

“कुछ समझ में नहीं आता कि क्या किया जाय । कुवेर ने तो आशा छोड़ दी है, किन्तु महेन्द्रनाथ अभी फिर उनसे मिलेंगे । देवे, ऊँट किस करवट बैठता है ।” कहते हुए देवेन्द्र ने कपड़े ढतारे ।

“वह कहते क्या हैं ?” आशा ने पूछा ।

“मारी बातें उनकी ऊल-जलूल हैं । कभी कुछ कहते हैं, कभी कुछ ।” देवेन्द्र ने उत्तर दिया ।

“लौटने को क्यों नहीं कहते ।” आशा ने फिर पूछा ।

“कह तो दिया, उनके जवाब सब चेतुके-से हैं । कभी कहते हैं, तुम्हें और पहले आना चाहिए था । कभी कहते हैं, मेरी उस मोर रुचि नहीं । ऐसे बेवकूफ़ आदमी से बात करके निरर्थक समय नष्ट करना है ।” देवेन्द्र ने किंचित् झुंझाकर कहा ।

आशा चुप हो गई । वह यही सुनना चाहती थी । उसने भर्त्सा भौंति समझ लिया कि उनकी सारी कमज़ोरी निरर्थक में ही है । उसने एक लयी साँस ली ।

“भोजन के पश्चात् देवेन्द्र कुवेर तथा महेन्द्रनाथ के पास चला गया, किन्तु आशा का दग्ध हृदय वेदना से ओत-प्रोत हो रहा था । उसे आज शाम के पहले ही सब कुछ तय कर लेना है । उसने सोचा, सुभे एक बार उनसे बातें करने का मौक़ा और मिलना चाहिए था ।

किंतु यदि मैं उन्हें समझा-बुझाकर रायपुर जाने के लिये राज़ी भी कर सकी, तो भी मेरे यहाँ लौटने का मार्ग तो बट ही हो जायगा। मैं क्या बहाना करके उनके पास जा सकूँगी? हाय! उन्होंने मुझे कैसी बुरी परिस्थिति में डाल दिया। आज शाम को यदि वह आए, और मैं उनसे न मिली, तो और भी अनर्थ होगा। कैसे मिलूँ?”

शाम होने में अब ढेर ही क्या थी। उसने देवेंद्र से पूछा—“क्या शाम को फिर आप लोग सुमेर से मिलने जायेंगे?”

देवेंद्र ने उत्तर दिया—“नहीं। उसने कल सबेरे मिलने को कहा है। उसने हम लोगों से स्पष्ट कह दिया कि वह आज शाम को हम लोगों से नहीं मिल सकता।”

आशा का यह तीर भी व्यर्थ गया। उसने सोचा, तब अवश्य अनर्थ होकर ही रहेगा। हाय! अब इस घर में मैं थोड़ी ही देर की मेहमान हूँ।

आज देवेंद्र ने कुवेर तथा महेंद्रनाथ को विशेष रूप से अपने घर में डाकत ही थी। घोष बाबू तथा उसके दो-एक और भी मित्र आमंत्रित थे। आशा का मन किसी दूसरी ओर था, किंतु दिखाने के लिये वह नौकरो से काम ले रही थी।

लगभग ७ बजे घोष बाबू तथा अन्य सजन भी आ पहुँचे। आशा का मन बैठता जा रहा था। जैसे-जैसे वह इस घर को छोड़ने की तैयारी में थी, वैसे-ही-वैसे उसका हृदय किसी भावी आशका से व्यथित-भा हुआ जा रहा था।

वह बार-बार ऊपर छत पर जाकर गली की ओर देख रही थी। उसे एक बार ऐसा मालूम पड़ा, मानो गली के मोड़ पर कोई खड़ा है।

नीचे से देवेंद्र ने पुकारा—“रामू! बहजी से पड़ो, अब कितनी देर है?”

थोड़ी ही देर में नौकरानी रधिया ने बैठक में आकर ऊधम मचा दिया। देवेंद्र, कुबेर, महेंद्रनाथ तथा अन्य सभी व्यक्ति उठकर खड़े हो गए।

देवेंद्र ने चिल्लाकर कहा—“क्या चकती है ? भाफ़-साफ़ क्यों नहीं कहती, क्या हुआ ?”

रधिया ने सिटपिटाकर कहा—“बाबूजी ! सारा घर ढूँढ़ मारा, बहूजी का पता नहीं चलता।”

देवेंद्र ने उसके गाल पर एक तमाचा जड़ दिया—“हरामज़ादी क्या बक रही है। घर में नहीं हैं, तो क्या तेरे सिर में समा गई। चल यहाँ से।”

तमाचा खाकर रधिया की रही-सही सिट्टी-पिट्टी गुम हो गई। हाथ जोड़कर बोली—“बाबूजी, सारा घर देख डाला। रामू कहता है—रामू ”

“क्या कहता है रामू ? बोलती क्यों नहीं।” देवेंद्र ने पूछा।

रधिया ने सारा साहस इकट्ठा करके कहा—“रामू कहता है कि बहूजी कहीं चली गईं। मैंने उन्हें दरवाज़े से बाहर जाते देखा है।”

देवेंद्र झटपट अंदर पहुँचा। कुबेर तथा महेंद्रनाथ आदि सुप रह गए। सारा रग उखड़ गया।

दोप बाबू अंदर घुस गए। देवेंद्र पागल की तरह चारों ओर कोना-कोना छान रहा था। रामू की गर्दन पकड़कर उसने कहा—“बता साले ! बहूजी कहाँ गईं। मैं तेरी खाल खोंच लूँगा, अगर तूने जरा भी बात छिपाई। यता, जल्दी बता।”

रामू ने काँपते हुए कहा—“बाबूजी, मेरा इसमें क्या कुसूर ? मैंने मिला उन्हें दरवाज़े के बाहर जाते देखा है। जब बड़ी देर तक वह नहीं लौटी, तो मैंने आकर रधिया से कहा। मेरा क्या दोष है बाबूजी ! मैं बाल-बच्चेवाला आदमी हूँ, झूठ नहीं बोलूँगा।”

देवेंद्र पागल हो रहा था। उसने इतना सुनकर भी दो-चार हाथ गरीब रामू पर और जड़ दिए, तथा हाँफता हुआ पलंग पर बैठ गया।

“आप घबडाते क्यों हैं देवेंद्र बाबू? मैं अभी जाकर पता लगाता हूँ। कोनवाली में रिपोर्ट भी लिखनी पड़ेगी (Married women को entice away) कर ले जाना क्या मामूली बात है। सरकार केम चलाएगा।” धोप बाबू ने देवेंद्र की पीठ पर हाथ रखते हुए कहा।

देवेंद्र कुछ बोला नहीं। वह सीधा पलंग पर लेट गया। कुवेर तथा महेंद्रनाथ बिना खाए-पिए ही लेट रहे। अन्य लोग भी लौट गए।

रात्रि में महेंद्रनाथ ने कुवेर से पूछा—“मामला कुछ समझ में नहीं आया।”

कुवेर ने लेटे-ही-लेटे धीरे से कहा—“संसार विचित्र बातों का घर है। भगवान् जाने, कौन क्या करता है।”

महेंद्रनाथ ने क्षण-भर चुप रहकर कहा—“क्या देवेंद्र की स्त्री अच्छे चरित्र की नहीं थी?”

कुवेर ने धीरे से जवाब दिया—“हो सकता है। किसी ज़माने में उसकी स्वयं भी तो चरित्र-श्रेष्ठों में गणना थी। संभव है, स्त्री भी ऐसी हो।”

महेंद्र चुप रहे। उन्हें प्रभा की याद आई। एक लंबी साँस खींचकर उन्होंने कहा—“हाँ भाई! संसार में बड़े दुःख हैं।”

कुवेर ने क्षण-भर याद कहा—“अब यहाँ से चल देना ही ठीक है। सुमेर से अधिक आशा नहीं।”

महेंद्रनाथ उस समय प्रगाढ़ चिंता में मग्न थे। उन्होंने शायद कुवेर की बात सुनी ही नहीं।

एकाएक महेंद्रनाथ पूछ बैठे—“क्यों भाड़े, आशा का भी कुछ पता चला ?”

कुवेर मानो सोते से जाग पड़े । बोले—“आशा ने निश्चित ही आत्महत्या कर ली । यह भी हमारे ही कर्मों का फल कहा जा सकता है ।”

महेंद्रनाथ फिर कुछ न बोले ।

रात्रि में कुवेर को ऐसा मालूम पड़ा, मानो आशा आकर उनके सिरहाने खड़ी हो गई ।

कुवेर ने देखा, मानो आशा के दोनों हाथ रक्त-रजित थे ।

कुवेर ने पूछा—“यह क्या किया आशा तुमने ?”

आशा मुस्कराई । उसने दोनों हाथों की हथेलियाँ कुवेर के सामने बढ़ा दीं ।

कुवेर ने घबड़ाकर आँखें मींच लीं । उन्हें ऐसा मालूम हुआ, मानो कोई उनका हाथ पकड़े हुए किसी गहरे गड्ढे की ओर खींचे लिए जा रहा है । कुवेर ने देखा, महेंद्रनाथ थे ।

कुवेर ने हाथें झुड़ाने की चेष्टा की, किंतु हाथ लोहे के सदृश दृढ़ होते गए । उन्होंने देखा, सामने एक शव पड़ा हुआ उनकी ओर धूर रहा है । उन्होंने पहचाना ।

शव रज्जों का था । चारों ओर से भीषण चींकार, आर्तनाद तथा करुणक्रंदन उन्हें सुनाई पड़ा । कुवेर चिल्ला उठे ।

महेंद्रनाथ ने झट चारपाई से उठकर कुवेर का हाथ पकड़ लिया, और कहा—“क्यों कुवेरचंदजी ! क्या स्वप्न देख रहे हो ?”

कुवेर की निद्रा टूट गई । वह घबराकर उठ बैठे । स्वप्न की भाँति उन्होंने झटका देकर हाथ झुड़ा दिया ।

कुवेर ठठकर खड़े हो गए । उन्हें यह न समझ पड़ा कि वह स्वप्नावन्धामें हैं या जाग्रत ।

महेन्द्र ने पूछा—“क्या स्वप्न में डर गए ? उठो, मुँह-हाथ धोकर भगवान् का नाम लो।”

अब कुवेर को होश हुआ। वह बोले—“बड़ा भयंकर स्वप्न था भाई माहम ! मेरा हृदय अब तक धड़क रहा है।”

थोड़ी देर घात करके कुवेर फिर लेट गए। उन्हें अब सो जाने का साहस ही न हुआ। वह लेटे-लेटे भगवान् का स्मरण करने लगे।

न-जाने क्यों उन्हें महेन्द्रनाथ से बड़ा डर लगने लगा।

तड़के ही कुवेर ने शय्या त्याग दी।

आशा ने कहा—“आखिर आप मुझसे चाहते क्या हैं ? इस प्रकार जीवन बरबाद कर डालने से आपको क्या आनंद मिलेगा ?”

सुमेर चुप रहे । आशा ने फिर कहा—“बोलिए, आप क्या चाहते हैं ? इस बात को खूब समझ लीजिए कि मैं किसी प्रकार का भी आपका अहित न होने दूँगी । आपको कुचेर दादा के साथ रायपुर लौट जाना पड़ेगा ।”

“और तुम क्या करोगी ? क्या फिर टेंपेट के पास लौटकर जाना है । हृदय की बात कहो न ?” सुमेर ने स्तब्ध भाव से कहा ।

“मैं ? मैं क्या करूँगी, यह आपको बतलाना न पड़ेगा । मेरे लिये अब कहीं स्थान नहीं । रायपुर लौट जाने का वचन देने हो ? बोलो, एक मेरी यह बात स्वीकार कर सकते हो ?” आशा ने कातर होकर पूछा ।

— “लौटूँगा, किंतु तुम्हें मिट्टी में मिलाकर नहीं । मैंने सदा से तुम्हारा बड़ा अहित किया है आशा ! मैं तुम्हें बरबाद होने से बचा सकता था, किंतु वामना के उन्माद से बहकर मुझे यह न मालूम था कि तुम मेरी आराध्य हो उठोगी । मैं तुम्हें कभी छोड़ सकता हूँ आशा ? नहीं, कभी नहीं ?”

आशा सिर झुकाकर बैठ रही । सुमेर ने फिर कहा—“यद्यपि तुम्हारे सिवा मेरे जीवन का सगी न कोई हो सकता है, और

न किसी को ऐसा अधिकार है। तुम मेरी हो, मेरी ही रहोगी। मैं रायपुर नहीं जाऊँगा।”

आशा के आँसू गिर-गिरकर उसका आँचल भिगो रहे थे। उसने एक बार मिर उठाकर सुमेर की ओर देखा। सुमेर की दृष्टि उसी की ओर थी।

“किंतु मैं तुम्हारे साथ न रह सकूँगी। निरीह, निर्दोष तथा पति-परायण राज्ञों के रक्त से मैं अपने हाथ न रँग सकूँगी। यदि आशा को अपनी ही रखना है, तो केवल एक ही शर्त है।” आशा ने किंचित रुढ़ होकर कहा।

“वह क्या?” सुमेर के मुँह से निकला।

“कल तुम्हें कुवेर दादा के साथ रायपुर चले जाना पड़ेगा। उसका उपलक्ष्य मैं आशा तुम्हारी चिर दासी रहेगी। मेरे स्वामी! आशा तुम्हारी ही रहेगी, किंतु इसी शर्त पर।” आशा ने कह डाला।

“यह पहली मेरी समझ में नहीं आई। ज़रा स्पष्ट कहो न?” सुमेर ने उतावलेपन से कहा।

आशा क्षण-भर चुप रही। कदाचित् वह अपनी वाक्शक्ति का सचय कर रही थी। यह उसके जीवन के शेष भाग का स्थायी मौदा था।

सुमेर ने फिर कहा—“बोलो आशा! मैं तुम्हें स्पष्ट समझना चाहता हूँ।”

आशा ने सुमेर के पैरों पर अपना मिर रख दिया। सुमेर के पैर आँसुओं से भीग रहे थे। उन्होंने उसे उठाकर हृदय से लगा लिया। आशा का बाँध टूट रहा था। सुमेर ने उसे अपने वक्ष-स्थल से बद्ध किए हुए ही कहा—“आज तुम जो माँगोगी, वही तुम्हें दूँगा आशा! बोलो, क्या कहती हो?”

आशा हिचकियाँ ले रही थी। सुमेर भी चुप रहा।

हृदय का वेग कुछ कम होने पर आशा ने धीमे स्वर में कहा—
“क्या तुम गचमुच मुझसे प्रेम करते हो सुमेर?”

सुमेर ने सूखी हँसी हँसकर कहा—“क्या यह भी बतलाना पड़ेगा आशा? हँसी कर रही हो क्या?”

आशा ने किञ्चित् गंभीर होकर कहा—“तो मेरा जीवन सदैव तुम्हारा रहेगा। मैं तुम्हारे लिये रहूँगी, किंतु तुम मेरे साथ बरबाद न हो सकोगे। तुम्हें रायपुर जाना पड़ेगा। तुम्हारा जीवन मैं ख़तरे में न डाल सकूँगी। कुयेर दादा मेरे आश्रयदाता हैं, तुम्हें उनके साथ भेजकर मैं अवश्य अपने कर्तव्य का पालन करूँगी। तुम्हारे शरीर पर पहला अधिकार रज्जो का है। अतएव उसकी चीज़ उसे मिलनी चाहिए। तुम मुझसे मिल सकोगे, किंतु केवल प्रेम के नाते। तुम जहाँ कहोगे, मैं वहाँ रहूँगी, तुम्हारी आज्ञा मेरे लिये अंतिम वस्तु हांगी, किंतु—किंतु”

कहते-कहते आशा रुक गई। सुमेर ने उसका हाथ पकड़कर कहा—“रुक क्यों गई आशा? बोलो, क्या कह रही थीं?”

आशा ने फिर कहा—“किंतु रज्जो के लिये—उमक सुख के लिये—हमारा-तुम्हारा अब पवित्र नाता रहेगा। बोलो, स्वीकार है?”

“किंतु क्या यह संभव हो सकेगा?” सुमेर ने पूछा।

“इसके लिये तुम्हें निश्चित रहना चाहिए। मैं अपना कर्तव्य निभा सकूँगी, ऐसी मुझे पूर्ण आशा है।” आशा ने उत्तर दिया।

“तो फिर तुम्हारे जीवन-यापन का उपाय क्या होगा आशा?” सुमेर ने किञ्चित् परेशान होकर कहा।

“सुनिष्ट, मैं समार के सामने न सही, किंतु मन, कर्म, वचन से तुम्हारी हूँ। अतएव मेरे जीवन-यापन का भार भी तुम पर ही रहेगा। जिस दशा में तुम मुझे रखोगे, उसी दशा में प्रसन्न रहूँगी।

जब तक तुम मेरा और कोई प्रबध न करोगे, मैं इसी मकान में रहूँगी। रायपुर पहुँचकर तुम्हें मेरा प्रबध करना पड़ेगा। बोलो, क्या यह ठीक रहेगा ?” आशा ने पूछा।

क्षण-भर चुप रहकर सुमेर ने कहा—“यही ठीक रहेगा। मैं रायपुर से शीघ्र लौटकर तुम्हारा स्थायी प्रबध करूँगा। अच्छा, अब हमें विश्राम करना चाहिए। तुम्हारे यहाँ चले आने से देवेन्द्र के यहाँ काफ़ी हलचल मच गई होगी।”

“अवश्य। वह मेरे हँसने में कुछ उठा न रखेगा। खैर, मैं अब चली। मेरे सोने के लिये एक कोठरी चाहिए।” आशा बोली।

सुमेर आशा के मुँह की ओर देखने लगा। आशा का चेहरा लाल हो उठा था। सुमेर ने साहस करके कहा—“यह क्या कह रही हो, आशा ?”

“यही ठीक है। मैं चली।” कहकर आशा सामनेवाली कोठरी में चली गई। सुमेर देखता ही रह गया। आशा ने अदर से साँकल चढ़ा ली। सुमेर एक श्याम लेकर पलंग पर लेट रहा।



कुबेर जब सवेरे उठे, तो उनका शरीर भारी मालूम पड़ रहा था। रात की घटना ने उन पर काफ़ी प्रभाव डाला था। न-जाने क्यों उन्हें किसी भावी आशका ने बेचैन-सा कर दिया।

नौकर आया। कुबेर ने पूछा—“क्यों रे, बहूजी का पता चला ?”

रामू ने विर हिलाकर कहा—“ना बाबूजी, वह तो एकदम गायब हो गई।”

कुबेर चुप रहे। अब तक मर्देंद्रनाथ भी दैनिक कार्यों से छुटी पा चुके थे। उन्होंने कुबेर से कहा—“अब क्या प्रोग्राम है भाई साहब ?”

“क्या सुमेर के पास चलना होगा ? आजा तो नहीं है, किन्तु फिर भी चलकर अंतिम उत्तर ले लेना चाहिए। देखें, क्या कहता है।” कुवेर ने कहा।

“आप भी तो स्नानादि से छुट्टी पा लें। आज आप कुछ अधिक सुस्त तथा अव्यवस्थित मालूम पड़ रहे हैं। कल रात को कांठें भयंकर स्वप्न देखा था आपने, तभी तो चिल्ला पड़े थे।” महेंद्रनाथ ने कहा।

“हाँ, कल रात्रिवाला स्वप्न तो शीघ्र भूलने की चीज़ नहीं। मुझे तो निकट भविष्य में किसी अनहोनी घटना की आशंका-सी मालूम पड़ रही है।” कुवेर ने विचित्र आकृति बनाते हुए कहा।

“आप व्यर्थ घबरा रहे हैं। ईश्वर सब अच्छा ही करता है। चलिए, जल्दी तैयार हो जाइए। जो कुछ होगा, देखा जायगा।” कहते हुए महेंद्रनाथ आराम-कुर्सी पर लेटकर समाचार-पत्र पढ़ने लगे।

स्नानादि से निवृत्त होकर कुवेर महेंद्रनाथ के साथ चलने को तैयार हो गए। उन्होंने देवेंद्र से भी मिल लेना उचित समझा।

देवेंद्र अब तरु चारपाई पर लेटा हुआ था। उसके चेहरे से यह मालूम पड़ रहा था कि वह यहाँ से रोग-शय्या सेवन कर रहा है।

“कहिए, कुछ पता चला ?” कुवेर ने पूछा।

“जी, कुछ नहीं। आइए, बैठिए।” कहकर देवेंद्र उठकर बैठ गया।

“मामला क्या हुआ ?” कुवेर ने महानुभूति दिग्वलाने हुए पूछा।

“यह मेरे भाग्य का द्रोण है ? मैंने जो उसे अपने यहाँ आश्रय दिया, उसका यह फल है।” देवेंद्र ने दुखी होकर कहा।

“तो क्या वह आपकी स्त्री न थी ?” कुवेर ने साश्चर्य पूछा।

“स्त्री भला ऐसा कर सकती है ? वह निराश्रिता थी । घरवाले उसकी मृत्यु चाहते थे । जीवन की कठिनाइयों से ऊबकर वह मेरे आश्रय में आई थी । मसार में उसका कोई न था, मैंने उसे अपना सब कुछ दे दिया था । किंतु मुझे धोखा दिया गया ।” कहकर देवेंद्र ने एक गहरी श्वास ली ।

कुवेर का भी चित्त दुखी हुआ । उसे सदैव का दुष्टात्मा समझते हुए भी उनके हृदय में उसके प्रति थोड़ी महानुभूति उत्पन्न हुई ।

“क्या वह सहृदय न थी । तुम्हारे इतना त्याग करने पर भी क्या वह तुम्हारी न हो सकी ?” कुवेर ने पूछा ।

“मैं आपको अधिक भूलभुलैया में नहीं डालना चाहता । मेरी आश्रिता और कोई नहीं, आपकी चिर परिचित आशा ही थी ।” देवेंद्र कह गया ।

“आशा !” कुवेर मानो आकाश से गिरे । थोड़ा देर के लिये उन्हें विश्वास ही न हुआ । उनके मुँह से अनायास निकला—
“तुम क्या सब कह रहे हो देवेंद्र ? नहीं, यह कभी संभव नहीं । वह तुम्हारे पास कभी नहीं आ सकती । तुम मुझे भुलावे में डाल रहे हो । आशा तो न-जाने कब की मर चुकी । गलत ! एकदम गलत !”

कुवेर का गिर घूम रहा था । वह उठकर कमरे में टहलने लगे । उनका मुँह से फिर निकला—‘क्या तुम सब कह रहे हो देवेंद्र ? आशा ! तुम्हारे पास ! एकदम गलत !’ यह तो सब ही ही नहीं सकता । गलत !”

देवेंद्र आश्चर्यान्वित होकर उनके मुँह की ओर देखने लगे । कुवेर का दिमाग ठिकाने न देखकर उसने कहा—“कूट घोलने में मुझे क्या लाभ ? आपको विश्वास करना चाहिए ।”

“हाँ, अविश्वाम का कोई कारण भी तो नहीं दिखलाई पड़ता । किंतु—किंतु क्या वह ऐसी हो गई ?” कुवेर बड़बड़ाए ।

“मैंने भी उस पर विश्वास किया । किंतु कल रात्रि को उसका एकाएक गायब हो जाने का तो अब तक मेरी समझ में कोई कारण न आया । मैं कभी उस पर संदेह न कर सका ।” महेन्द्र ने कहा ।

“आइए, भाइँ साहब ! देर हो रही है ।” नीचे से महेन्द्रनाथ ने आवाज़ दी ।

कुवेर विना कुछ और कहे ही नीचे उतर गए । न-जाने क्यों उन्हें एकाएक सुमेर का इस आशा-कांड से संबंध जान पड़ने लगा । उन्होंने कुछ कहना उचित न समझा, किंतु उन्हें यह हृद विश्वास हो गया कि सुमेर का अब रायपुर जाना नितांत असंभव है ।

“चलिणु, बड़ी देर हो गई ।” महेन्द्रनाथ ने कहा ।

कुवेर उनके साथ चल दिए । मार्ग में कुवेर ने कहा—“सुमेर के पास हम लोग व्यर्थ जा रहे हैं । वह किसी प्रकार भी अब हमारे साथ न चलेगा ।”

“क्यों ? क्या कोई नई बात हो गई ?” महेन्द्रनाथ ने किंचित् आश्चर्य के साथ पूछा ।

कुवेर ने उन्हें सब कुछ बता दिया । एक दीर्घ श्वास लेकर महेन्द्रनाथ चुप हो गए ।

“कहिए, अब आप क्या कहते हैं ?” कुवेर ने पूछा ।

“हैं । अब मुझे भी मामला बेदख जान पड़ता है ।” महेन्द्रनाथ ने उत्तर दिया ।

किंतु सुमेर से मिलकर दोनों को घोर आश्चर्य हुआ, जब उसने विना किसी प्रकार की भूमिका के ही कह दिया कि मैं रायपुर चलने के लिये तैयार हूँ ।

दोनों ने एक दूसरे के मुँह की ओर देखा । अतः मैं शाम की गाड़ी से चलने का निर्णय करके दोनों देवेंद्र के घर लौट गए ।

सुमेर ने दिन-भर टाँढ़-धूपकर आगा के लिये एक छोटा-सा घर तलाश कर लिया । मकान-मालिक एक संभ्रात सज्जन थे । उनके घर में उनकी माता, स्त्री तथा दो लड़कियाँ थीं । सुमेर ने उनसे एक छोटी-सी कोठरी किराए पर लेकर आगा को उसी में पहुँचा दिया । उन्होंने आगा का परिचय अपनी स्त्री कहकर दिया ।

ॐ

ॐ

ॐ

शाम को सुमेर, कुचेर और महेंद्रनाथ तीनों रायपुर रवाना हो गए ।

सुमेर ने सोचा, चलौ, अब ठीक हुआ । अब चलकर रज्जो से निपटना है ।

कुचेर ने सोचा, क्या आगा मचमुच जीविन है ? देवेंद्र के पास ! आश्चर्य ॥

महेंद्रनाथ का हृदय दुखी था । वह क्षण-क्षण में रज्जों के स्वास्थ्य के लिये ईश्वर से प्रार्थना कर रहे थे ।

[१७]

रज्जो की अवस्था दिन-पर-दिन बिगड़ती ही चली गई। अकेली हेमप्रभा एकाएक बचरा उठी। महेंद्रनाथ को लग्न न हुआ। कई दिन हो गए थे, किंतु अभी तक उनके लौटने की कोई खबर न आई।

उस दिन रात-भर रज्जो की दशा बहुत खराब रही। डॉक्टर लोग रात-भर उसके मिरहाने बैठे उपचार करते रहे। हेमप्रभा के पास सिवा ईश्वर से प्रार्थना करने के और क्या था।

सवेरे रज्जो ने आँखें खोलीं। हेमप्रभा ने उसके मिर पर हाथ फेरते हुए कहा—“किसी तबियत है बेटी ?”

रज्जो के शरीर में मानो बोलने की शक्ति ही न थी। उसने मिर हिला दिया।

“पानी पियोगी ?” हेमप्रभा ने पूछा।

रज्जो ने फिर मिर हिला दिया। डॉक्टरों ने कहा—“चिन्ता की बात नहीं। लक्षण बुरे नहीं हैं। अब ज्वर बहुत साधारण है।”

सबको आशा हुई। रज्जो को भी कुछ आराम मालूम पड़ रहा था। उसने एक बार कहा—“मा !”

“मैं यहीं हूँ बेटी ! बोलो, क्या कहती हो ?” हेमप्रभा ने उसके मिर पर हाथ फेरते हुए कहा।

“क्या चाचाजी लौट आए ?” उसने धीमे स्वर से पूछा।

“अभी आनेवाले हैं। लगभग दो घंटे में आ जायेंगे।” हेमप्रभा ने उसे झुठी मांझना देते हुए कहा।

किंतु ठीक दो घंटे में महेन्द्रनाथ सचमुच ही आ गए । हेमप्रभा ने सोचा, इस वक्त मैं जो बात कहती, वह अवश्य पूरी होती । हाय ! मैंने राजा का दीर्घ जीवन ही क्यों माँग लिया ?

हेमप्रभा को मालूम न था कि भगवान् जो बात पूरी करना चाहते हैं, उसे ही मुँह से निकलवाते हैं ।

बाँड़ी ही ढेर में महेन्द्रनाथ, कुवेर तथा सुमेर राजा के सामने आकर खड़े हो गए ।

“क्या जी है बेटी ?” महेन्द्रनाथ ने समीप आकर कहा ।

“ठीक है ।” राजा ने धीरे से कहा ।

“इधर देखो, कौन आया है ?” महेन्द्रनाथ ने कहा ।

राजा ने सुमेर की ओर देखा, और आँखें दूसरी ओर कर लीं ।

हेमप्रभा ने देखा, उसकी आँखों में दो अश्रु-कण आकर बिना टुलके ही रह गए ।

बाँड़ी ढेर में वहाँ केवल सुमेर ही रह गए । राजा के निकट बैठकर उन्होंने उसका दुर्बल हाथ अपने हाथ में लेकर कहा—
“क्या जी है तुम्हारा राजा ?”

अश्रु-कण उस चार टुलक पड़े । उसने सुमेर का हाथ धीरे में सरकाकर अपने पल्ल-स्थल पर रख लिया । वह कुछ बोली नहीं ।

‘क्या नाराज़ हो ?’ सुमेर ने बड़ी कोमल आवाज़ में कहा ।

राजा के शुष्क अश्रुओं में हलकी-सी मुसकान दौट गई । सुमेर ने उसक मिर क आँखों को सुलझाते हुए कहा—“बोली, नाराज़ तो नहीं हो ?”

मुख पर किंचित हास्य लाते हुए उसने धीरे से कहा—
“हैं तो ।”

“तो अब समा कर दो । क्या समा न करोगी ?” सुमेर ने बड़े प्रेम से कहा ।

रज्जो ने उसी तरह मुमकान के साथ धीरे से कहा—“नरेंद्रनाथ की बेटी सबको क्षमा कर सकती है, किंतु अपने पति को नहीं।”

“क्यों ?” सुमेर के मुँह से निकला ।

“क्योंकि उसे अपनी भूल मालूम हो गई है । पति पिता से भी बड़ा है, यह मुझे किसी ने भी कभी नहीं सिखलाया ।” रज्जो ने किंचित् गभीर होकर कहा ।

“अधिक बातें न करो । अच्छा, अब आराम करो । हम दोनों ने एक दूसरे को क्षमा कर दिया ।” सुमेर ने उसके हृदय हलका करने की नीयत से कहा ।

रज्जो थक गई थी, किंतु वह साहस कर धीरे से बोली—
“किंतु मेरी मा—मेरी प्रेममयी मा—मेरे पिता से भी बड़ी है । या मुझे याद में मालूम हुआ । उन्होंने मुझसे बतलाया कि पति से बढ़कर मसार में .. ”

सुमेर ने उसके मुँह पर हाथ रखते हुए कहा—“इस समय सो जाओ । तुम थक गई हो, फिर बात करेंगे ।”

किंतु रज्जो में मानो एक दैवी स्फूर्ति-भी आ गई थी । उसने सुमेर का हाथ पकड़कर कहा—“मैं बैठना चाहती हूँ । क्या मुझे उठने में सहारा दोगे ? लेटे-लेटे पीठ में दर्द मालूम पड़ रहा है ।”

सुमेर ने उसे सहारा देकर उठाया । रज्जो तकिए के सहारे बैठ गई । उसने सुमेर से भी चारपाई पर अच्छी तरह बैठने को कहा ।

सुमेर पैर ठठाकर भली भाँति चारपाई पर बैठ गए । एकाएक कटे वृक्ष की तरह रज्जो ने उनके पैर पकड़कर अपना भिर म दिया । सुमेर घबरा उठे—“यह क्या करती हो । लेटो, नहीं तो तुम्हारा ज्वर बढ़ जायगा ।”

“अब ज्वर से मैं नहीं डरती । जिना तुमसे क्षमा प्राप्त किए मैं

तुम्हारे चरणों को न छोंदूँगी। बोलो, क्या क्षमा करोगे?" रज्जो ने पैरों पर सिर रगड़ते हुए कहा।

सुमेर ने उसे बल-पूर्वक उठाकर पलंग पर लिटा दिया। रज्जो बेहोश थी। सुमेर ने उसके शरीर से अनुमान लगाया कि ज्वर बहुत बढ़ गया है। वह उसे लिटाकर चारपाई से उतर आए।

फ़ौरन् डॉक्टर आए। परीक्षा के बाद डॉक्टर ने कहा—“उत्तेजना के कारण ज्वर बढ़ गया है। यह बहुत बुरा है। अब ऐमा न होना चाहिए।

रज्जो फिर न उठ सकी। उसे अब मरने में मानो आनन्द-सा आ रहा था। ठीक १० घंटे बाद पति की गोद में सिर रखे हुए महाशय नरेंद्रनाथ की स्वाभिमानिनी पुत्री पिता के पास चल दी!



सुमेर ने उसे सद्गति दी। उनका हृदय मानो कोई निकाले ले रहा हो। शमशान से लौटने पर उन्हें अपने चारों ओर अधकार-सा मालूम पड़ने लगा। वह सिर पर हाथ रख बैठ गए।

एकएक आशा ने उनके स्मृति-मंदिर को हिलाया। वह पलंग पर विश्राम करने चले गए।

महेंद्रनाथ ने किसी से बातचीत न की। वह अधिकांश में अपने कमरे के बाहर ही न निकलते थे। कभी-कभी सतत हेमप्रभा को सांत्वना देने की चेष्टा करते-करते वह स्वयं फूट-फूटकर रो पड़ते।

रज्जो की मृत्यु का हाल पाकर किरण भी वहाँ आ गई थी। वह हेमप्रभा के साथ रहकर उसका दिल बहलाया करती थी।

सुमेर दुखी भी थे, और लज्जित भी। उन्हें ऐमा मालूम पड़ता था, मानो रज्जो की मृत्यु का कारण वही हो। उन्हें राजप्रासाद में किसी से भी मिलते-जुलते लज्जा-भी मालूम पड़ती थी।

एक दिन महेंद्रनाथ ने कुबेर तथा सुमेर को अपने कमरे में बुलवाकर कहा—“मैं आप लोगो से कुछ आवश्यक बातें करना चाहता हूँ।”

कुबेर तथा सुमेर चुप रहे। महेंद्रनाथ ने कहना शुरू किया—“यह आपको मालूम है कि अब हमारे वंश की समाप्ति हो रही है। इसके पहले कि मैं भी अपनी अंतिम वड़ियों गिनूँ, मैं इस विस्तृत तथा विनाश संपत्ति का अपने जीवन ही में दान-पत्र लिख देना चाहता हूँ।”

कुबेर ने दुखी हृदय से कहा—“देव्यर ने आप पर विपत्ति का पहाड़ लाद दिया है। यद्यपि मेरा ऐसा कहने का कांड भी अधिकार नहीं, फिर भी मैं आपसे एक प्रार्थना करूँगा।”

“कहिए।” महेंद्रनाथ ने बड़े गंभीर भाव से कहा।

“यात कुछ ब्रेडगी-सी है, किंतु बिना कहे न रह सकूँगा। अभी आपकी अवस्था इतनी अधिक नहीं। मैं आपको पुनर्विवाह करने की सलाह देना चाहता हूँ।” कुबेर ने कहा।

महेंद्रनाथ सूधी हँसी हँसकर बोले—“आप - जैसा मन्त्र मैंने अपने जीवन में नहीं देखा। विवाह की कल्पना भी करना मैं अपने लिये पाप समझता हूँ। मैं अपनी मारी संपत्ति आपके चरणों में रख देना चाहता हूँ। जीवन-भर की भूलों का केवल यही प्रायश्चित्त है।”

कुबेर सज्जाटे ने आ गए। महेंद्रनाथ ने सुमेर की ओर देखते हुए कहा—“आप बुरा न मानें सुमेर बाबू। मैं आपको इस मार के संभालने में विलकुल अयोग्य समझता हूँ। किंतु मैं आपके साथ अन्याय करना नहीं चाहता, अतएव आपके जीवन-निर्वाहार्थ मैंने १००) मासिक की सिफारिश अपने दान पत्र में कुबेरचटजी से कर दी है। किंतु देने और न देने का अधिकार भी उन्हीं को है।”

महेंद्रनाथ ने उठकर आल्मारी से अपना दान-पत्र निकाला । उसके अनुसार सपूर्ण सपत्ति कुवेर के नाम लिख दी गई थी । उसमें महेंद्रनाथ ने लिखा था—“यदि कुवेरचट चाहें, तो मैं सुमेरचट को १००) मासिक देने की उनसे अपील करता हूँ ।”

दान-पत्र पर महेंद्रनाथ के हस्ताक्षर थे । उन्होंने एक दूसरा कागज़ और निकाला । उसके द्वारा रज्जो ने अपनी सारी सपत्ति का अधिकारी महेंद्रनाथ को बना दिया था ।”

सुमेर के मुँह में एक शब्द भी न निकला । कुवेर ने कहा—“आपने एक गुरुतर भार मेरे ऊपर रख दिया है । मैंने अपने जीवन में धन से अधिक और किसी वस्तु से घृणा नहीं की । आपने मुझे बड़ा भारी भार सौंप दिया है ।”

महेंद्रनाथ मुस्किराए । बोले—“आप इस भार से मुक्त नहीं हो सकते । हम लोगों ने सदा धन के मद में उमका दुर्ब्यवहार ही किया है, और आज हमारा नर्वनाश भी इसी के मद से हुआ है । आशा है, अब उचित पुरुष के हाथ में पहुँचकर उमका सदुप-योग होगा ।”

कुवेर कुछ न बोले । वह आवश्यकता से अधिक गंभीर थे । सुमेर उठकर बाहर चले गए । महेंद्रनाथ ने दान-पत्र उठाकर कुवेर के पैरों के पास रख दिया ।



इस प्रकार साधारण स्थिति में रहनेवाला कोरा नाम का कुवेर भाग्य-चक्र से वास्तव में कुवेर हो गया ।

जीवन से परिस्थितियाँ ही मनुष्य को विवश कर देती हैं। परिस्थिति के हाथ का पुतला बनकर मनुष्य जीवन - सप्राप्त के रगमच पर नाना प्रकार के अभिनय करने लगता है। जीवन का मनोवैज्ञानिक पहलू ही मनुष्य के लिये परिस्थितियाँ उत्पन्न कर देता है। कहने का अभिप्राय यह कि पहले तो मनुष्य मनोविज्ञान की परिधि में पड़कर अपने लिये अनुकूल तथा प्रतिकूल परिस्थिति उत्पन्न कर लेता है, और बाद में वही परिस्थिति मनुष्य को एक निश्चित मार्ग पर रुक जाने के लिये विवश कर देती है। अतएव मनोविज्ञान और परिस्थिति में बड़ा गूढ़ पारस्परिक संबंध रहता है। मनोविज्ञान का आश्रय लेने के बाद तर्क और मनोवृत्ति में युद्ध होने लगता है, और अधिकांशतः इस स्वाभाविक संघर्ष में मनोवृत्ति की ही विजय होती है। इस स्थल पर यह भी स्पष्ट कर देना अनुचित न होगा कि अध्यवसायी तथा विचारशील पुरुष प्रायः तर्क की शरण लेते हैं, और भावुक एवं भाधारण बुद्धिवाले मनोवृत्ति की ओर झुक जाते हैं। इसी से प्रायः देखा गया है कि तार्किक लोगों की परिस्थिति प्रायः अनुकूल और सुलभी हुई रहती है तथा भावुक लोगों की अधिकांशतः प्रतिकूल हुआ करती है।

कुंभेर तार्किक श्रेणी का व्यक्ति था, और सुमेर भावुक श्रेणी का। पाठक दोनों की परिस्थितियों से जो विषमता अनुभव कर रहे हैं, उसका मुख्य कारण हमारा मनोविज्ञान ही है। दोनों

ही मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों पर चलते हैं। एक तर्क पर चलता है, दूसरा मनोवृत्ति की प्रधानता में आत्मसमर्पण करता रहता है। यही कारण है, कुवेर की परिस्थितियाँ प्रतिकूल होते हुए भी अनुकूल हो गईं, तथा सारे साधन उपलब्ध होते हुए भी सुमेर दर-दर के भिखारी एवं परमुखापेक्षी हो गए।

कुवेर भी आशा से प्रेम करते हैं और सुमेर भी। कुवेर मनोवृत्तियों पर विजय पाते हैं, और सुमेर को मनोवृत्तियाँ पतन की ओर ले जाती हैं।

यदि सुमेर में तर्क और विचारशीलता प्रचुर मात्रा में होती, तो वह सोच लेते कि कुवेर की संपत्ति मेरी ही संपत्ति है। कुवेर-जैसे व्यक्ति को अपनाकर अपना बना लेना कठिन बात नहीं। किंतु इतना सब कुछ होने पर भी उन्होंने कुवेर को गंर समझा, और उनकी यही विचार-शक्ति उनके प्रशस्त मार्ग का रोड़ा बनकर खड़ी हो गई। उन्होंने कुवेर की दया पर रहने को अपना घोर अपमान समझा। उन्होंने कुवेर से स्पष्ट कह दिया कि मैं आपकी कृपा का भूखा नहीं। उस समय सुमेर इस बात को भूल गए कि मैं अब तक किसकी कृपा पर निर्भर रहा हूँ। कुवेर को भी आश्चर्य था, क्योंकि सुमेर-सा सीधा सादा और आज्ञाकारी भाई इस प्रकार उनका खुल्लमखुल्ला विरोधी हो जाय। उन्होंने इसे धन का ही एक टाप समझा। कुवेर ने सोचा, धनी बनने की भूमिका ही मैं अपने को सौ देना पड़ता है।

महेंद्रनाथ धाड़े ही दिनों में हेमप्रभा तथा दो-चार नौकरों को साथ लेकर काशी चले गए। उन्होंने वहीं रहने का निश्चय कर लिया, और संपूर्ण संपत्ति न साथ राजप्रामाद श्री कुंजी भी कुवेर के हाथ में सौंप दी।

सुमेर ने आशा को एक पा भेजकर यहाँ की सारी परिस्थिति

लिख दी। उन्होंने लिखा—“दो-चार दिन में ही मैं तुम्हारे पाम पहुँच जाऊँगा। हम दोनों मिलकर प्रेम-पूर्वक अपना जीवन व्यतीत करेंगे। भजवान् कहीं-न-कहीं से भोजन अवश्य देगा।”

सुमेर का पत्र पाकर आशा को बड़ा दुःख हुआ। वह कुवेर से वैर बाँधने के पक्ष में न थी। उसने सुमेर को लिखा—“कुवेर दादा भले आदमी है, उनके साथ रहने और उनकी आज्ञा मानने से तुम्हारा कोई अपमान नहीं। मेरी तो यही सलाह है। आगे तुम्हारी मर्जी।”

पत्र पाकर सुमेर को सतोष न हुआ। उन्होंने समझा, आशा इन बातों को क्या समझ सकती है। एक दिन मौक़ा पाकर उन्होंने कुवेर से कहा—“मैं जाना चाहता हूँ दादा।”

कुवेर चकित होकर उनका मुँह देखने लगे। उन्होंने कहा—“कहाँ जाना चाहते हो?”

कुछ देर चुप रहकर सुमेर बोले—“जिधर जा सकूँगा, चला जाऊँगा।”

“आखिर क्यों जाना चाहते हो, मैं क्या सुन सकता हूँ?” कुवेर ने ज़रा खीझकर कहा।

सुमेर नीचा मिर किए खड़े रहे। कुवेर ने फिर कहा—“तुम्हें भले आदमियों की तरह घर में रहना चाहिए। इस प्रकार मारे-मारे फिरने से क्या लाभ? तुमने कभी अपने भविष्य पर भी विचार किया?”

सुमेर का कंठ खुला। उन्होंने मिर उँचा करके कहा—“आप लोगों की दया ने मैं अपना अच्छा बुरा सब समझता हूँ। मैं मर्दा का-सा मूर्ख अब नहीं रहा। आप व्यर्थ मुझे समझाना चाहते हैं। आप जो कुछ भी कह रहे हैं, उसमें मेरे लिये किसी तरह का भी तत्व नहीं। आप मुझे जाने की आज्ञा दें।”

‘तो तुम्हें रोक भी तो नहीं सकता। मेरा जो कर्तव्य है, मैं उसका पालन करना चाहता हूँ। मैंने सदा से तुम्हें अपने पुत्र के समान समझा है। मुझे आश्चर्य है, इतने थोड़े समय में तुम कितने अधिक बढ़ल गए हो। तुम्हारे चले जाने से क्या मैं सुखी रह सकूँगा?’ कहते हुए कुवेर के नेत्र सजल हाँ उठे।

“जिनके पास धन है, वह कभी दुःखी नहीं रह सकता। आप धनवान् हैं, सुखी हैं। मैं निर्धन हूँ, मेरा इसी तरह रहना ही अधिक उपयुक्त है।” सुमेर ने व्यंग्यात्मक ढंग से कहा।

“तो क्या तुम हमारे धन से सुखी नहीं हो सकते सुमेर? चार दिन पहले यह धन हमारे का था, आज मेरा है, और कल तुम्हारा भी तो हो सकता है। वैभव पाने से मनुष्य मनुष्य नहीं रहता।” कुवेर ने कहा।

“यही तो देख रहा हूँ कि धन पाने से मनुष्य के स्वभाव में कितना परिवर्तन हो जाता है।” सुमेर ने चुटकी ली।

कुवेर समझ गए कि व्यंग्य मुझी पर है। उन्होंने शांत भाव से कहा—‘तुम धन चाहते हो सुमेर? बोलो, तुम्हें कितना धन चाहिए?’

“पूर्णाधिकार होने पर भी जो वैभव मुझे नहीं मिला, उस पर मैं लानत भेजता हूँ।” सुमेर ने मगर्व कहा।

कुवेर को इस प्रकार की बातें अमर्यादी होती जा रही थीं, किन्तु उन्होंने अट्टा सदनशीलता दिखाई। वह बोले—“तुमने स्वयं अपने को इस योग्य नहीं रखा। तुम्हारे निष्कलंक चरित्र पर जो धन्यता लगा है, वह अमिट है। तुम राजा थे, किन्तु तुमने उसका महत्त्व नहीं समझा। फिर भी तुम मुझे इतना पाया समझोगे, यह मुझे स्वप्न में भी ध्यान न था।”

“किन्तु आपको भी मुझ पर विश्वास करना चाहिए था। अपना

विश्वास खोकर मैं एक घड़ी भी रहना नहीं चाहता । आप उम्मी ऐश्वर्य को मेरे हाथ में सौंप सकते थे ।” सुमेर ने स्पष्ट रूप से कह डाला ।

कुबेर ने क्षण-भर सोचा, फिर कहा—“तुम भूल रहे हो सुमेर । वह याती मेरी भी नहीं ।”

“क्या मैं जान सकता हूँ कि वह किमकी है ?”

“अवश्य । महेंद्रनाथ ने उसे सुरक्षित रखने के लिये मुझे साँपा है । क्या तुम इतना भी न समझ सके ?”

“जानता हूँ ।”

“क्या ?”

“यही कि शायद मैं उस धन को बरबाद कर दूँगा । यही न ?”

“तुम ठीक समझे । ऐसी दशा में मेरा क्या कर्तव्य है, समझते हो ?”

“खूब समझता हूँ । और, तभी तो आपको अकेला, स्वच्छद ढोंग देना चाहता हूँ । मैं तो इस धन के लिये राहु के सदृश हूँ । आजा दीजिए, चलता हूँ ।” कहते हुए सुमेर वहाँ से चल दिए ।

कुबेर बड़ा देर तक मौन बैठे रहे । थोड़ी देर में किरण ने आकर कहा—“क्या सुमेर कहीं जा रहा है ?”

“हाँ ।”

“कहाँ ?”

“जहाँ इच्छा होगी ।”

“क्यों ?”

“क्योंकि उसकी संपत्ति उसे न मिलकर उसके बड़े भाई को दे दी गई ।”

“तुमने उसे समझाया नहीं ?”

“मैं तो समझ चुका । अब तुम समझाकर रोक सको, तो रोक लो ।”

किरण पति के मुँह की ओर देखती रह गई। कुवेर ने कहा—
“यह लड़का भी हाथ से गया। मैं जितना ही उसकी समस्या को
सुलझाना चाहता हूँ, उतना ही वह उसे उलझा रहा है।”

“तो जहाँ जो हो, चला जाय। जिंदगी-भर खिलाया-पिलाया,
पाल पोसकर बड़ा किया, और सदा अपने बच्चे की तरह रक्खा।
अब पर लग गए हैं, तो क्यों न उड़ेगा? हत्तेरे जमाने की।” किरण
को किंचित् क्रोध आ गया।

कुवेर गान रहे। किरण ने कहना शुरू किया—“बाह रे जमाने!
चदचलनी करेगा, दूसरों की बहू-बेटियों को ताकेंगा, और इस तरह
थकड़ेगा। बाह भाड़े बाह।”

“और इस पर तुरा यह कि आपने यह धन वैभव तो कैसे
लिया?”

“ज़रूर ले लेंगे। मैं तो उसे हत्यारा समझती हूँ। पराई बेटो
को किस तरह कलपा-कलपाकर मार डाला, यह थोखी-देखी बात
है। किसकी बेटो मार डालोगे, वह तुम्हें ज़रूर अपनी धाती सौंप
देगा। हत्यारा कहीं का।”

कुवेर उठकर बाहर आ गए। उनका दिल भी सुमेर की ओर से
फिर रहा था। वह बाहर जाकर उपवन में टहलने लगे।

किरण बड़ी देर तक क्रोध में भरी बैठी रही। उसी समय सुमेर
ने शाकर कहा—“गाली क्यों दे रही हो भाभी! मैंने कौन-सा
तुम्हारे मुँह का कंठ छीन लिया?”

किरण उचल पड़ी। बोली—“नहीं, कौर तो मैंने छीना है, जो
तुम्हें आज इस तरह बोलने लायक बनाया। तुम्हारा क्या कटूर,
यह तो जमाने का दंग है। जैसा किया, वैसा पाया।”

“ज़रूर पाया। राज-शाट तो मिल गया, और क्या चाहती हो?”
सुमेर ने जवाब दिया।

“तो तुम्हारी छाती क्यों फटी जाती है ? जो शरम अपने भाड़े-भौजाई को नहीं देख सकता, उसका क्या डीर । तुम्हारा वम चले, तो निकलवा दो भाई ।” किरण ने उच्च स्वर से आसमान ऊपर उठा लिया ।

सुमेर ने समझा, किरण भयानक रूप से उत्तेजित है ।

किरण ने फिर कहा—“अगर तुम्हारी यही इच्छा है, तो कोई कमर उठा मत रचना । मैं भी देखूँ”

‘चुप रहो भाभी । मैं बहुत बरदाश्त कर रहा हूँ, अब यदि ज़दान खोली, तो अन्धा न होगा । रही निकलवाने की बात, मैं उमदा भी फल तुम्हें जल्द देखने को मिल जायगा ।’ सुमेर ने चिन्ता कर कहा ।

‘अन्धा, जायो, फोसी पर लटकवा देना । जाओ चाया, इन लोगों का पीछा छोड़ो ।’ कहती हुई किरण झनझनाकर कमरे के बाहर निकल गई ।

सुमेर कुछ देर तक वहाँ खड़े रहे, फिर एक विचित्र-भी आकृति बनाते हुए बाहर हो गए ।

कुवेर ने सब कुछ सुना अपने कानों से, किंतु शांत रहे । उन्होंने समझ लिया, सुमेर अवश्य कुछ-न-कुछ उपद्रव मचा करेगा । वह निकट-भविष्य की आशंका से गुरु बार भयभीत हो उठे ।

सुमेर उसी दिन शाम को वहाँ से चल दिए ।



लखनऊ पहुँचकर उन्होंने आशा से कहा—“भाभी ने मुझे अपमानित किया है । मैं इसका बदला लूँगा ।”

आशा चुप रही । सुमेर बहुत थके हुए थे । पाम में पैमा न होने से वह स्टेशन से घर तक पैदल ही आए थे ।

सुमेर का स्नान मुख देखकर आशा का हृदय बहुत दुखी हुआ। उसने कहा—“ये बातें फिर होगी, पहले नहा-धोकर भोजन कर लो।”

सुमेर बहुत श्रांत थे। स्नान तथा भोजन से निवृत्त होकर वह लेट गए। आशा धीरे-धीरे उनके पैर टाचने लगी।

कई दिन बाद पूर्ण विश्राम पाकर सुमेर का जी हलका हुआ। उनके सामने अब नई समस्या थी, और वह थी भोजन की। रायपुर चले जाने से उनकी नौकरी समाप्त हो गई थी, उस जगह दूसरा व्यक्ति काम कर रहा था। सुमेर के पास अब कौड़ी भी न थी।

उस दिन सघेरे से कुछ भी भोजन न बना था। थोड़े-से मुने हुए घने सुमेर को खिलाकर आशा ने उपवास कर डाला था।

शाम को सुमेर देवेद्र के घर पहुँचे। देवेद्र सुस्त-सा श्राम-कुरमी पर लेटा हुआ विचार-सागर में गोते खा रहा था।

“कय आणु भाई?” उसने सुमेर को देखकर कहा।

“कई रोज़ हो गए आणु। क्या करूँ, नौकरी भी छूट गई। कुछ समय में नहीं आता, क्या करूँ।” सुमेर ने विन्न भाव से कहा।

“रायपुर से कैसे लौटे? क्या बीबी से नहीं पटी?” देवेद्र ने किंचित् मुस्किराकर कहा।

“उपका तो स्वर्गवास हो गया। अब मेरी वहाँ पूछ ही क्या?” सुमेर ने मजल नेत्रों से कहा।

“हैं, क्या रज्जो नहीं रही! बड़ा गज़ब हो गया। कुवेर कहाँ गए। क्या कानपुर में हैं?” उसने पूछा।

सुमेर चुप रहे। देवेद्र समझ गया, सुमेर कष्ट में हैं। उसने उन्हें मायना देते हुए कहा—“घबराने की कोई बात नहीं। बतलाओ, मैं तुम्हारी क्या सहायता कर सकता हूँ?”

घण-भर चुप रहकर सुमेर ने कहा—“टाटा ने मुझे पूरा धोखा

दिया। सारी संपत्ति हड़पकर अपने पास धर ली। मैं तो कौड़ी-कौड़ी का भिखारी होकर आया हूँ।”

देवेंद्र बोला—“मगर उस पर तो कानूनन् तुम्हारा हक है। कुवेर कैसे ले सकते हैं।”

“बहुत दिनों से यह सारा पदयत्र चल रहा था। अंत को दादा से प्रभावित होकर महेन्द्रनाथ ने सारी संपत्ति उनके नाम कर दी।” कहकर सुमेर रो दिए।

देवेंद्र द्रवीभूत हो गया। उसे कुवेर की ईमानदारी पर पहले ही से शक था। उसने सुमेर को धैर्य बँधाते हुए कहा—“घबराने की कोई बात नहीं। तुम्हें जिस प्रकार की सहायता की आवश्यकता हो, मुझसे लो। मैं तब तक वकीलों से सलाह लेकर कोई उपाय निकालूँगा।”

सुमेर को दृष्टि में तिनके का महारा मिला, किंतु इस समय देवेंद्र से कुछ माँगते हुए उन्हें लज्जा आ रही थी। वह दिन-भर के भूरे थे, उन्हें मालूम था कि आशा के मुँह में आज एक अन्न का दाना भी नहीं गया है, फिर भी वह चुप बैठे रहे।

किंतु वह माँगने से बच गए। देवेंद्र ने १००) का एक नोट टूट हुए उनसे कहा—“यह लो अपने खर्च के लिये। जब तुम्हारे पाम हो, दे देना।”

सुमेर ने संकोच के साथ हाथ बढ़ाकर रुपए ले लिए। थोड़ी देर बाद वह घर लौट आए।

सुमेर ने आशा से सब कुछ कहा, किंतु देवेंद्र की सहायता आशा को पसंद न थी।

बड़ी दौड़-धूप करने पर भी सुमेर को नौकरी न मिली। १००) कितने दिन चलते, मकान का भाड़ा भी तीन महीने का चढ़ गया। डेढ़र नौकरी की टौट धूप ने कुछ रुपए खर्च हो गए। सुमेर की

चिन्ताएँ बढ़ती जाती थीं। अब वह बात-बात पर खींक उठते हैं। आशा के प्रति भी अब उनका व्यवहार सरम न था। आशा सब कुछ देखती, किंतु सहन करती। वह जानती थी, सुमेर की मारी विपत्तियों की जड़ मैं हूँ, फिर भी वह शांत रहती। वह दिन-पर-दिन सूखती चली जाती थी। न तो भर-पेट भोजन मिलता और न तन भर कपड़ा, किंतु वह सुमेर के साथ इसी में सुखी रहती। सुमेर का चिड़चिड़ा मिज़ाज कभी-कभी उसके घोर अपमान का कारण हो जाता, फिर भी आशा हँसते हुए सब कुछ भेल जाती।

उस दिन घर में अन्न का ढाना भी न था। सुमेर ने फिर देवेंद्र का ध्यान किया, किंतु बार-बार उसके पास जाते उन्हें लज्जा मालूम होती थी। वह स्तब्ध होकर कमरे में टहलने लगे।

आशा आई। वह सुमेर की गति-विधि देखकर समझ गई कि यह इस समय बड़ा परेशानी में है।

‘थोड़े-से चावल तैयार किए हैं, चलकर खा लो।’ उसने धीरे से कहा।

“मुझे भूख नहीं। तुम जाकर अपना काम करो।” सुमेर ने धनमने ढग से कहा।

“सबेरे से कुछ खाया नहीं, फिर भी भूख नहीं। कैसी बातें करते हो? चलो, थोड़ा-सा खा लो।” आशा ने आजिज़ी से कहा।

“तुम मुझे क्यों तग कर रही हो? एक बार कह दिया, मुझे भूख नहीं, फिर क्यों पीछे पड़ी हो? ज़रा भी चैन नहीं।” सुमेर ने रुष्टे होकर उत्तर दिया।

“तो कब तक भूखे रहोगे? यह तो रोज़ का चर्चा है। न खाने का कोई कारण भी तो हो।” आशा ने ज़रा रुझामी-सी होकर कहा।

“जो काम नहीं करता, उसे भोजन करने का क्या अधिकार?”

मैंने कह दिया, जाओ, अपना काम करो। सुभे ज़रा देर के लिये अकेले छोड़ दो।” सुमेर ने खींककर कहा।

आगा चुप होकर धीरे से चल दी। जाते-जाते उसने आँचल से दो बूँद आँसू पोछ लिए। सुमेर ने उस ओर देखा भी नहीं।

सुमेर बड़ी देर तक उम्मी प्रकार टहलते रहे, फिर जूने पहनकर बाहर चलने लगे। आगा ने उन्हें देखा, और पूछा — “कितनी देर में लौटोगे।”

सुमेर ने जवाब दिया — “कुछ ठीक नहीं। मेरा रास्ता मत देगना।”

वह चल दिण। उन्हें स्वयं न मालूम था कि वह किधर जा रहे हैं। रास्ते में उन्हें एक व्यक्ति ने रोककर कहा — “कहाँ चले भाई?”

सुमेर ने चौंकर उसकी ओर देखा।

“आहो, तुम हो भाई जगदीश। बहुत दिन बाद मिले। कहा, ठीक तो हो।” सुमेर हँसकर बोले।

“अरे, मेरे ठीक होने की क्या। हमेशा ठीक रहता हूँ। अपनी कहा, कहाँ सुर्दासी सुरत बनाए हुए जा रहे हो? कुयेर भाई कहाँ हैं?” जगदीश ने सदा की-सी मनोरंजक टोन में कहा।

“क्या करूँ भाई, भाग्य का फेर है। ठोकरें खा रहा हूँ। ऐसे में कौन किसका होता है?” सुमेर ने एक ठड़ी सॉस लेकर कहा।

“घात क्या है, कुछ बताओगे, या यों ही मजनों की तरह मिसकारियाँ भरते रहोगे। अजय चौखल आदमी हो।” जगदीश बोला।

“मय कुछ क्या यहीं सड़क पर कहना पड़ेगा। अरे, कहाँ घंटकर घान करो।” सुमेर ने कहा।

“बैठूँ कहाँ? न तुम्हारे घर-घार, न मेरे। दोनों ही ठटल्लू चूल्हे की तरह हैं। फिर बताओ, कहाँ चलें? आओ, अमीनाबाद-पार्क में चलकर बैठें।” जगदीश ने उनका हाथ पकड़ते हुए कहा।

दोनों श्रीमतीनाबाद-पार्क पहुँचे। यह पार्क भी लखनऊ की शोभा बढ़ाता है। शाम को खूब भीड़ होती है, और सभी प्रकार के स्त्री-पुरुष आपको टहलते, घूमते, बैठे तथा ग्रामोद-प्रमोद करते मिलेंगे।

सुमेर श्रार जगदीश पार्क के कोने में बैठ गए। सुमेर दिन-भर क भूखे-प्यासे थे, उन्होंने जगदीश से कहा—“भाई, कुछ भय मालूम पड़ रही है। आओ, कुछ खा-पी लें, तब बातें करें।”

“अजब चोगा हो तुम सुमेर! रास्ते-भर क्यों नहीं कहा, जो थोड़ी-सी चाट उठा लेते। अच्छा, आओ। सामनेवाली खोचे की दूकान पर चलकर थोड़ी पेयामी कर डाली जाय।”

दोनों दूकान पर पहुँच। सुमेर बहुत भूखे थे, उन्होंने जी-भरकर खाया। उनके हृदय में एक बार यह विचार आया कि आशा भी दिन-भर की भूखी बैठती होगी। उनके हृदय में थोड़ा डर के लिये भीठा-भीठा दर्द-सा होने लगा।

या चुकने पर जगदीश पैसे देने लगा, तो सुमेर ने अपनी जेब में हाथ डालने की चेष्टा करते हुए कहा—“यह क्या कर रहे हो? मैं पैसे दे रहा हूँ। कितने पैसे हुए भाई?”

“ओग मत दिवाओ। जानता हूँ, बड़े पैसेवाले हो। मसुराल से रकम मिल गई है न?” कहते हुए जगदीश ने पैसे चुका दिए।

सुमेर ने जेब में हाथ खींच लिया। उनका केवल यहाना-मात्र था। कितने पैसे थे उनकी जेब में, यह पाठक भली भाँति जानते हैं।

दोनों फिर पार्क में लौट आए। जगदीश तो हरी घास में लोट लगाने लगा, किंतु सुमेर बैठे रहे।

‘रायपुर क्या ने नहीं गए?’ जगदीश ने पूछा।

सुण-भर चुप रहकर सुमेर बोले—“यह भी एक दुर्घात कहानी है। मैं बड़े कष्ट में हूँ जगदीश भाई।”

सुमेर रो पड़े ।

“बड़े पागल हो । क्या भाभी ने डंके मारकर निकाल दिया । बताते क्यों नहीं महाशय ?” जगदीश ने कहा ।

सुमेर अब रुक न सके । उन्होंने हृदय खोलकर सारी सच्ची कथा सुना दी । जगदीश सब कुछ सुनकर अवाक रह गया । उनका मन कुमेर पर अविश्वास करने को न होता था, फिर भी उसने सोचा, संभव है, सपत्ति के लोभ ने कुमेर की सुमति हर ली हो ।

“तो अब आशाजी हैं कहाँ ? हम लोग तो उसे मरी हुई समझ रहे हैं । खूब रही ।” जगदीश बोला ।

“यहीं हैं । डम वक्त मेरी बड़ी बुरी दशा है जगदीश भाई । तुम्हें अपना समझकर सब कुछ कह देने का साहस हुआ है ।” सुमेर बोले ।

जगदीश कुछ और माच रहा था । उसे कुछ दिनों पूर्व की सुस्मृतियाँ याद आ रही थीं । आशा से वह श्रद्धा प्रेम करता था । उस पर अपना सब कुछ न्यौछावर करने के लिये प्रस्तुत, किंतु आशा ने उसे बड़ी बुरी तरह अपमानित किया था । कहाँ गया आशा का तेज और धोये सतीपन का अपमान ! छि !

जगदीश की सारी देह बिहल उठी ! आशा इतना गिरी ! देवेंद्र, सुमेर, छि ! वेश्या से भी गड़-बिती ! क्या मैं सुमेर और देवेंद्र से भी गया-बिती था । ठीक है—

“स्त्रीचरित्रं पुण्यस्य भाग्य

दैवो न जानाति कुत्रो मनुष्य ।”

जगदीश के चेहरे का रंग चटल गया था, जो संन्या के हीन अधिकार में सुमेर न देख सके । यदि वह देख पाते, तो अवश्य अनुमान के पथ पर दौड़ लगाने लगते ।

“चुप क्यों हो गए भाई ! क्या तुम्हें मेरी कहानी पर विश्वास नहीं हुआ ?” सुमेर ने पूछा ।

जगदीश बोला—“विश्वास क्यों नहीं हुआ, किंतु क्या मेरी कुछ शकालें दूर करोगे ?”

“अवश्य ।”

“कुछ छिपाओगे तो नहीं ?”

“तुमसे क्या छिपाना, जब सब कुछ कह डाला ।”

“आशा तुमसे वास्तव में प्रेम करती है, इसका कोई दृढ़ प्रमाण दे सकते हो ?”

सुमेर चुप रहे ।

“तुम्हीं ने कहा है, मेरे रायपुर चले जाने पर आशा देवेंद्र के पास चली गई । क्या तुम्हें उसके प्रेम पर संदेह नहीं हुआ ?”

“हुआ, किंतु जिन परिस्थितियों में पढ़कर आशा ने प्रेमा किया, उसे सुनकर वह संदेह जाता रहा । आपको भी तो बता चुका हूँ ।”

जगदीश चुप रहा । सुमेर ने फिर कहा—“आशा पर मुझे पूर्ण विश्वास है । देवेंद्र के प्रेम्बर्य को छोड़कर वह मेरे पास चली आई, यही इस बात का काफी प्रमाण है ।”

“हूँ ।” कहकर जगदीश फिर चुप हो गया । सुमेर भी चुप थे ।

थोड़ी देर बाद जगदीश बोला—“किंतु कुबेर की नीयत पर शक करने की जो नहीं चाहता । परंतु एक बात ऐसी है, जिसके प्रलोभन में पढ़कर कुबेर प्रेमा कर भी सकता है । शायद तुम्हें वह बात नहीं मालूम ?”

“वह क्या ?” सुमेर ने मात्सर्य पूछा ।

गण-भर चुप रहकर जगदीश ने फिर कहा—“कुबेर आशा का मथमे पुराना प्रेमी है, आशा भी कुबेर को प्रेम की दृष्टि से देखती रही है ।”

सुमेर को याद आया कि कुचेर दादा का विवाह भी पहले आशा ही से ठीक हुआ था। जगदीश ने उसे नई उलझन में डाल दिया।

“कुचेर और आशा, दोनों एक दूसरे से जितना प्रेम करते थे, यह मुझसे अधिक कोई नहीं जानता। उसके पिधरा हो जाने पर भी तथा किरण का विरोध होने पर भी कुचेर ने उसे अपने घर लाकर रखा था।”

सुमेर का दिमाग चक्कर खा रहा था। कुचेर के शुष्क व्यवहार की तरह में सुमेर को एक नई वस्तु मिल गई।

“आपकी बात में समझ रहा हूँ। संभव है, दादा ने सारा कुछ चढ़ी बुद्धिमानी से रचा हो। मैं तो . . .”

बात काटकर जगदीश ने कहा—“और इस प्रेम-कांड के बीच ही मैं तुम डाल-भात में मूसलचंद की तरह आ कूटें। वय, आगे तुम स्वयं समझ सकते हो।”

सुमेर चिंता-मग्न थे। जगदीश ने कहा—“उठो भाई! काफ़ी देर हो गई है।”

दोनों उठ खड़े हुए। मार्ग में सुमेर ने कहा—“आप ठहरे कहाँ हैं?”

“कोई ठिकाना भी हो। मित्रा होटल के ओर और कहाँ?” जगदीश बोला।

“तो फिर मेरे ही घर पर चलकर ठहरिए।”

“तुम्हें तकलीफ़ हो जायगी। व्यर्थ मैं तुम्हें काट देने में लाभ?”

“नहीं, मैं अब आपको परदेजियों की तरह पढ़ा न रहने दूँगा। चलिए, आपका सामान होटल में टूठा लाऊँ।” सुमेर ने ज़िद पकड़ते हुए कहा।

जगदीश तो यह चाहता ही था। आशा से मिलने की टमझी प्रबल इच्छा थी। कुछ ‘ना-नू’ करने के बाद गज़ी गे गया।

दोनों होटल पहुँचे, और एक ताँगे पर सामान लदवाकर चल दिए ।

सुमेर को याद आया कि घर में तो एक ढाना भी नहीं, और मेहमान को लिए जा रहा हूँ । उन्हें फिर एक बार याद आया कि आशा सबेरे से भूखी बठी होगी ।

“भोजन कर चुके हैं आप ?” सुमेर ने ताँगे ही में पूछा ।

“भोजन तो नहीं किया, किंतु भूख भी नहीं । तुम्हारे यहाँ भी तो खाना बन चुका होगा । आओ, थोड़ा खाना बाज़ार से ही लेते चलें ।” जगदीश ने कहा ।

सुमेर ने आपत्ति न की । ताँगा रोककर जगदीश ने एक रुपए की पूड़ी-मिठाई खरीदी ।

“इतनी क्या करोगे ?” सुमेर ने पूछा ।

“अरे भाई ? बहुत दिन बाद आशा से मिलने जा रहा हूँ, उसका मुँह भी तो मीठा कराना पड़ेगा ।”

सुमेर चुप रहे ।

जगदीश के आ जाने से आशा पर एक नई विपत्ति आ गई। उसे अपना मुँह दिखलाने में भी लज्जा मालूम पड़ती थी। उसने सोचा, वे दिन कितने सुनहरे थे, जब वह स्वर्ग की देवी-सी पवित्र थी, और आज वह कलकिनी, पापिनी तथा वेश्या-सा जीवन व्यतीत कर रही है। क्या सोचा होगा जगदीश ने मुझे इस दशा में देखकर। उसका प्रेम-प्रस्ताव पर मैंने उसे कितना फटकारा था। हाय ! मैं क्यों अपना कालिमा-युक्त मुँह दिखलाने के लिये ससार में जीवित रह गई।

उधर जगदीश ने घर पर अपना कढ़ा-सा जमा लिया था। सारे घर का खर्च उसी के कंधों पर था। उसने सुमेर को गड़े गड़े प्रलोभन देकर उल्लू बना रक्खा था। विपत्ति में पड़े हुए सुमेर जगदीश को अपना देवता समझ रहे थे।

किंतु यह सब कुछ सुमेर के लिये न था। जगदीश आशा का पुजारी था। वह अथ दिन-रात उसे अतृप्त नेत्रों से देखा करता। सुमेर दिन-भर शहर का चक्कर लगाते किसी नौकरी की खोज में, और जगदीश दिन-भर सुन-गुन्या पर लेटकर आशा पर आशा लगाए अपने नेत्रों को सफल किया करता।

सुमेर जगदीश के प्णमानों से दबते-से जा रहे थे। उन्हें जगदीश की कोई बात घुरी न लगती।

एक दिन जगदीश ने सुमेर से बिना पूछे ही, दूसरा मकान २७) नामिक पर ठीक कर लिया। सुमेर ने आपत्ति न की।

भरान चढ़ल दिया गया। अब जगदीश को पूर्ण स्वतंत्रता थी। भरान भली भौंति मजा दिया गया। ऐशोधाराम के सभी मामान् जुटा दिष्ट गए। आशा मय कुछ ममक रही थी, किंतु वह चुप थी। जगदीश के आगे अब सुमेर के पास उनकी फौडें भी करियाट न चलती थीं।

सुमेर का पतन हो चला था। वह अब कुछ ममकते हुए भी ममक न रहे थे। उन्होंने कभी कष्ट के दिन न देखे थे, किंतु विपत्ति के एक ही झोके ने उनकी तबियत हरी कर दी। उनके लिये कष्टों का सहना अब असह्य था।

श्रीर आशा ? वह विवश थी। वह जगदीश का भली भौंति जानती थी, और ममक रही थी कि मुझी को चंगुल में फँसने के लिये बध्न कैसे जा रहे हैं।

एक दिन जगदीश मध्याह्न के समय घूमने निकल गया। सुमेर घर पर थे। आशा ने अवसर पाकर कहा—“इस तरह कब तक पराण धन पर निर्वाह किया जायगा ?”

सुमेर ने नीचा भिर किए हुए ही कह दिया—“पराया धन कैसा ? जगदीश भी तो अपने ही हैं।”

आशा क्षण-भर चुप रही, फिर बोली—“किंतु फिर भी उनकी यह अकारण ठूपा हम पर कब तक लटती रहेगी ?”

“तो इससे तुम्हारे हस्तक्षेप करने की क्या जरूरत ? मैं अपना गरिष्ठ स्वयं सोच सकती हूँ।” सुमेर ने उत्तर दिया।

“किंतु मैं जगदीश के साथ इस प्रकार अधिक दिन रहना पसंद नहीं करती।” आशा के मुँह में निकला।

“व्यर्थ की बातें सुनने का मेरे पास समय नहीं।” कहते हुए सुमेर बाहर चला दिए।

आशा को सुमेर के इस व्यवहार पर बड़ा आश्चर्य था। उसने

मोचा, कितना पतन हो गया है इनका । हाय ! अब मेरे लिये क्या रास्ता हो सकता है ?

किंतु उसने दृढ़ निश्चय कर लिया कि मैं जगदीश से अपनी रक्षा करूँगी ।

एक दिन दोपहर को आशा पलंग पर लेटी हुई थी, सुमेर घर पर न थे । उन्ही समय जगदीश ने वहाँ आकर कहा—“यह भी लेटने का समय है आशा ।”

आशा उठकर बैठ गई । उसे जगदीश का वहाँ आना अचढ़ा न लगा । वह चुप बैठी रही ।

“सुझसे क्या नाराज़ रहती हो आशा ?” उसने उसक थोड़े निकट आकर कहा ।

“मैं कुछ नहीं यतलाना चाहती । आप कृपा कर अपने कमरे में जायें ।” आशा ने रुखाई से कहा ।

“आशा ! मैं कब तक तुम्हारी आशा में रहूँ ? मैं क्या तुम्हें इतना नापसंद हूँ ?” जगदीश ने उसका हाथ अपने हाथ में लेने की चेष्टा करते हुए कहा ।

आशा हाथ झटककर खड़ी हो गई । उसने हाँफते हुए कहा—“आप यहाँ से चले जायें । आप कृपा कर उनके मामले ही सुझसे बातें किया करें । जाहूँ ।”

जगदीश ने हँसकर कहा—“अब तुम मेरी हो चुकी हो । मैं कुछ देवेंद्र से भी गया-बीता थोड़े ही हूँ । मैंने तो सब कुछ तुम्हारे चरणों में अर्पण कर दिया है ।”

आशा खड़ी हुई हाँफ रही थी । उसने दरवाज़े के पास खड़े होने हुए कहा—“आप व्यर्थ की बातें घबका रहे हैं । कृपा कर आप यहाँ से चले जायें । मैं आपके हाथ जोड़ती हूँ ।”

जगदीश पागल हो रहा था । उसने झपटकर आशा को पकड़

लिया। आशा छूटने के लिये छूटपटाने लगी—“छोड़ दो मुझे। मैं तुम्हारे हाथ जोड़ती हूँ। छोड़ दो मुझे। छोड़ नीच।”

किंतु जगदीश कब सुननेवाला था। उसने उसे कमकर चिपटा लिया, और उसके सुंदर कपोलों पर एक चुपन जड़ दिया।

—आशा का मुँह तमतमा उठा। उसके वस्त्र फटकर चिथड़े-चिथड़े हो गए। जगदीश मनमाना सुर लूटने की चेष्टा करने लगा।

कोड़े उपाय न देखकर आशा ने कहा—“अच्छा, मुझे जग छोट दो। मैं तुम्हारी बातों का उत्तर दूँगी।”

हँसकर जगदीश ने उसे छोड़ दिया। आशा वस्त्र फट जाने से धिनकुल अर्द्ध-नगना थी। वह वस्त्र बदलने के बहाने कोठरी में घुस गई, और क्लिबड चढ़ कर लिए।

—हँसकर जगदीश ने कहा—“आज इतना ही काफी है। बाहर आ जाओ, मैं तुम्हें और अधिक तग न करूँगा। किंतु यह समझ लेना, तुम्हें मुझसे कोई वचा न मँकना। तुम्हें मेरी ही होकर रहना पड़ेगा। मैं घूमने जा रहा हूँ, निकलकर दरवाजा बंद कर लो।”

आशा ने दरवाजा न खोला। जगदीश चुपचाप कपड़े पहनकर बाहर निकल गया। बली ढेर तक आशा अंदर रही, फिर बाहर निकलकर उसने सड़क पर जाने का दरवाजा बंद कर लिया, और पलंग पर लेटकर अपनी दशा पर आँसू बहाने लगी।

गाम को सुमेर लोटे। आज वह कुछ प्रसन्न थे। उन्हें एक दफ्तर में ४०) मानिक की जगह मिल गई थी। पद जिम्मेदारी का था, अतएव उससे २,०००) की नकद जमानत माँगी गई थी। सुमेर ने सोचा, जगदीश यह काम कर देगा।

आशा माना बना रही थी। सुमेर ने पूछा—“जगदीश कहाँ गए?”

“मुझे नहीं मालूम।” मुँह लटकाए हुए आशा ने कहा।

सुमेर को उसका डग अच्छा नहीं लगा। बोले—“मे देवता हूँ, तुम्हारी आदत दिन-पर-दिन बिगड़ती ही जा रही है। तुमसे सीधी तरह बात भी नहीं की जाती ?”

आशा के आँसू बह चले। उन्हें आँचल से पोंछ बह खाना बनाने में लगी रही। सुमेर कपड़े उतारने अदर चले गए।

आशा निरंतर रोती रही। उसने आँचल से आँसू पोंछते हुए सुमेर से जाकर कहा—“खाना लाऊँ ?”

“तुम पहले जी-भरकर रो लो, फिर खाने के लिये पूछना।” सुमेर ने भौंहो पर बल डालते हुए कहा।

आशा और रो पड़ी। सुमेर ने चिल्लाकर कहा—“हट जाओ मेरे सामने से। यदि मेरे सामने ज्यादा कला फी, तो अच्छा न होगा।”

आशा खड़ी रही। सुमेर भी कुछ न बोले। वह उठकर दूमेरे कमरे में चले गए।

जगदीश आया। सुमेर के पास जाकर बोला—“मुस्त क्यों हो भाई ?”

सुमेर ने बरबस प्रसन्नता लाते हुए कहा—“कुछ नहीं।”

“खाना खा चुके ?”

“नहीं। मैं आज खाना नहीं खाऊँगा।”

“क्यों ? यह नम्र चलने का नहीं। उठो। आशा ! कहाँ गई ? खाना लाओ।”

आशा कोठरी बट किए लेटी थी। जगदीश ने कोठरी के किचार्ड पर धक्का देते हुए कहा—“निकलिए आशाजी ! आज क्या खाना भी नहीं मिलेगा ? आओ।”

आशा को उसकी बोली विष-बुल्य जात हुई। उसने जवाब नहीं दिया।

जगदीश सुमेर के पास पहुँचकर बोला—“क्या कुछ हुआ है ?”
 आशा आकर भोजन परोसने लगी । जगदीश ने सुमेर से
 कहा—“आज क्या कुछ तुम दोनों में झगडा हुआ है ? क्यों
 आशा ?”

आशा कुछ न बोली । ठमने थाली लाकर सामने रख दी ।
 जगदीश आशा से बोला—“आओ, तुम भी बैठ जाओ ।”
 आशा चुपचाप बैठ गई । सुमेर और जगदीश ने खाना शुरू
 कर दिया ।

“तुम भी खाओ न ?” जगदीश ने कहा ।

आशा चुपचाप बैठी रही ।

“खाओ ।” जगदीश ने फिर कहा ।

आशा हिली भी नहीं ।

“खा क्यों नहीं लेती ?” सुमेर ने आज्ञा के तौर पर कहा ।

“मैं नहीं खाऊँगी ।” आशा ने क्रुद्ध भाव से कहा ।

“तो मैं भी नहीं खाऊँगा ।” जगदीश ने जाने से हाथ मीच
 लिया ।

आशा को जगदीश की बदमाशी और सुमेर की कायरता पर
 क्रोध आ रहा था । वह उठकर चल दी ।

“इधर आओ ।” सुमेर ने लाल-लाल शीर्षे करके कहा ।

आशा नहीं आई । सुमेर को जगदीश का यह अपमान अच्छा
 न लगा । वह उठकर आशा की ओर बढ़ा । आशा खड़ी हो गई ।

“तुम्हें सुनाई नहीं पड़ता ?” उन्होंने आग-प्रचंड होते हुए
 कहा ।

“क्या ?” आशा ने कहा ।

“चलो, आओ चलकर ।” सुमेर ने आज्ञा दी ।

“मैं उनके साथ नहीं जाऊँगी ।” आशा के मुँह से निकला ।

“क्या कहा ?” सुमेर ने काँपते हुए कहा ।

“जाने डीजिए भाई साहब । मैंने तो हँसी में कहा था । रहने डीजिए ।” जगदीश ने सुस्किराकर कहा ।

“यह कुछ नहीं । मैं अपने मित्र का इतना अपमान बरदाश्त न कर सकूँगा । इसे खाना पड़ेगा ।” सुमेर ने काँपते हुए कहा ।

“और मैंने यह तय कर लिया है कि मैं इनके साथ नहीं खाऊँगी । जो शास्त्र अकेले से सुझ पर अग्याचार करे, मैं उसके साथ कदापि नहीं खा सकती । तुम्हारे तो आँग्यें नहीं ”

‘तडाक’ से एक थप्पड़ आशा के गाल पर पड़ा । सुमेर पागल हो रहे थे । आशा की आँखों के सामने अंधेरा आ गया ।

“हरामजादी ! आगे बढ़ती चली जाती है । तुम्हें अपने ही-से सब नज़र आते हैं । हड्डियाँ तोड़कर धर दूँगा ।” सुमेर ने क्रोध से धैर्य की तरह काँपते हुए कहा ।

“मे पुराय हूँ, तो पुराय रहने डीजिए । मैं तो आपको ”

सुमेर दैव्य हो उठे । उन्होंने आशा को बाल पकड़कर घसीटा, तथा ज़मीन पर पटक दिया, और लातों, घुँमों और थप्पड़ों की वर्षा करने लगे ।

“जाने डीजिए, जाने डीजिए ।” कहते हुए जगदीश भाग पड़ा ।

“आप अलग रहिए । मैं इस हरामजादी को ठीक किए देता हूँ ।” कहकर सुमेर ने फिर लात व घुँमों की वर्षा की ।

आशा का मिर फूट गया, और उसके कपड़े रक्त-रजित हो गए । जी-भरकर पीटने के बाद सुमेर ने उसे छोड़ा । घायल आशा दीवार के सहारे आँख बंद करके लेट रही ।

“यह क्या किया आपने ? आप भी कमाल करते हैं ज़रा-सी बात पर । उठिए, उसे ठीक करिए ।” जगदीश ने सुमेर से कहा ।

“मरने दो ।” सुमेर ने कहा ।

मिनट-भर वाद आगा कराहकर धीरे से उठी। स्नानागार में जाकर, उसने अपने घावों को धोकर रुपड़े बदले, और धीरे से आकर पलंग पर लेट रही।

सुमेर को अब पश्चात्ताप हो रहा था। प्रायः देखा गया है कि सहस्रकर्मियों लोगों को अपने कुकृत्यों पर इसी प्रकार पछताना पड़ता है। इस प्रकार के व्यक्ति कभी आगा-पीड़ा नहीं सोचते, और तात्कालिक भावना से चहकर बड़े ऊट-पटाँग काम कर डालते हैं। सुमेर भी सहस्रकर्मियों हैं, उन पर अँगरेज़ी की यह कहावत—“Look before you leap”—चरितार्थ होती है।

थोड़ी देर बाद जगदीश ने सुमेर से पूछा—“कहिण, उस नौकरी का क्या हुआ?”

सुमेर ने उसे सब कुछ बताया, और बोले—“अब केवल आपकी सहायता की आवश्यकता है।”

“यह कौन-सा मुश्किल काम है?” जगदीश ने कहा—“तुम कल ही जमानत का रुपया जमा कर सकते हो।”

सुमेर प्रसन्न हो गए। जगदीश थोड़ी देर में उठकर सोने चला गया। सुमेर थोड़ी देर तक बैठे रहे, फिर धीरे से आशा के कमरे में घुसे।

आशा चुपचाप चादर से अपने को लपेटे पड़ी थी। सुमेर ने सुना, वह धीरे-धीरे पीड़ा से कराह रही थी।

सुमेर को घोलने का साहस न हुआ। वह थोड़ी देर तक गड़े रटे, फिर अपने कमरे में जाकर पलंग पर लेट रहे।

दूसरे दिन जगदीश से रुग्ण लेकर वह अपने काम पर चले गए। आगा मटा की भाँति उठकर धीरे-धीरे अपना काम करने लगी। वह आवश्यकता से अधिक सुस्त थी।

थोड़ी देर में जगदीश ने उससे आकर कहा—“तयियत कैसे है आशा?”

आशा ने घृणा से अपना मुँह उधर से फेर लिया। जगदीश ने कहा—“तुम्हें मेरी वजह से ही इतना कष्ट उठाना पड़ा। मैं सुमेर को इतना क्रोधी न समझता था।”

आशा कुछ न बोली। जगदीश चुपचाप चला गया। उसने सोचा, आज इसे छेड़ना ठीक नहीं।

सुमेर को नौकरी मिल गई, किन्तु आशा को हमसे प्रसन्नता न थी। उसकी दृष्टि में सुमेर पतन की चरम सीमा तक पहुँच चुके थे। किन्तु उपाय ?

उपाय कुछ न था। आशा काफ़ी पैर चुकी थी। आज उसे अपनी जीवन-भर की भूलों पर पश्चात्ताप हो रहा था। उसने सोचा, क्या हिंदू-समाज में विधवा बनना ही बड़ा भारी अभिशाप है ? कहीं आदर नहीं। कहीं प्रेम नहीं। किन्तु देवेंद्र तो प्रेम करता था। फिर उसे छोड़ने, उसे धोखा देने का फल क्या हाथोंलाय नहीं मिल रहा है ? और कुचेर ? तब वैधव्य को दोष कैसा ? यह तो व्यक्तिगत पतन है मेरा। सुमेर ? क्या अब उनके हृदय में मेरे प्रति ज़रा भी प्रेम नहीं रह गया ? ओफ़् ! जिसे प्रेम का देवता समझकर पूजा, वह इतना नृगुण ! हे भगवान् ! अब क्या होगा ? उपाय ?

किन्तु उपाय अब आशा की भावनाओं से दूर था। रात-भर कम्बोटे उड़लते रहने पर भी उसे कोई उपाय सूझा या नहीं, यह हमें नहीं मालूम, किन्तु ...

दूसरे दिन सुबह आशा का पल्लग खाली था। वह कहाँ गई, कौन जाने ?

[२०]

सुमेर ने झपटकर टेवेंद्र का गला पकड़ लिया, और क्रोध से काँपते हुए कहा—“बता दुष्ट ! आशा कहाँ है ?”

टेवेंद्र भीचस्का-सा रह गया। अपने को छुड़ाने की चेष्टा करने हुए उसने कहा—“पागल हो गए हो सुमेर ? कहाँ है आशा ?”

सुमेर ने मुक्का तानते हुए कहा—“तू मुझसे बचकर नहीं जा सकता। यता, तूने आशा को कहाँ छिपा रखा है ?”

टेवेंद्र ने झटका देकर अपने को छुड़ा लिया, और कहा—“लडक्पन की बातें मत करो। यदि ठीक से बातें करना नहीं जानते, तो निकल जाओ मेरे घर से। तुम्हारा सिर कुछ फिरा-सा जान पड़ता है।”

सुमेर चुप गड़े रहे। टेवेंद्र ने कहा—“सुभे आज मालूम हुआ कि तुमने ही आशा को मेरे घर से उड़ाया था। तुम महा बुद्धि-हीन हो, तुमने उसका जीवन नष्ट कर दिया। बेचारी आशा।”

टेवेंद्र ने एक श्वास ली।

सुमेर चुप गड़े थे। टेवेंद्र ने फिर कहा—“उसने मेरा जीवन सुधार दिया, किंतु तुमसे यह भी न देखा गया। तुमने अवश्य उसे घोर धरत दिया होगा, नहीं तो क्या वह तुम्हें छोड़नेवाली थी ? तुम्हारे पीछे उसने मेरे हतने घड़े घैमव को ठुकरा दिया, और तुम . . .”

टेवेंद्र आदेश में काँपने लगा। उसने फिर कहा—“तुम जीवन-भर सुखी न हो सकोगे। आशा देवी है, तुमने उसकी श्रद्धा न की। जाओ, निकल जाओ यहाँ से।”

सुमेर चुपचाप जाने लगा। देवेंद्र ने कहा—“वह कब तुम्हारे यहाँ से गई?”

उमका मुँह खुला। धीरे से बोला—“आज सवेरे से ही रात काटकर देवेंद्र बोला—“कल कोड़े घटना हुई थी क्या? उसे मेरे पास आना था।”

सुमेर चुपचाप घर के बाहर हो गए।

देवेंद्र के मुँह से निकला—“वह मेरे पास आ सकती थी, किंतु सकीच वग नहीं आई। अब . . .”

देवेंद्र ध्यान-मग्न हो गया।



घर लौटने पर जगदीश ने पूछा—“कुछ पता चला?”

सुमेर ने मिर हिला दिया।

क्षण-भर चुप रहकर जगदीश ने कहा—“सुमेर तो उस पर कभी विश्वास न हुआ।”

सुमेर चुप रहे।

जगदीश ने फिर कहा—“इस प्रकार की स्त्रियों का विश्वास ही क्या? उन्हें तो नित नए की खोज रहती है।”

सुमेर ने कुछ न कहा। न-जाने क्यों उन्हें विश्वास ही चला था कि आशा अब इस समार में नहीं।

जगदीश अपने कमरे में चला गया। आशा के लिये पानी की तरह रुपया बहाकर भी वह हाथ मलकर रह गया।

सुमेर अब किसी से बात न करते। चुपचाप दफ्तर जाते, और वहाँ से लौटने पर हाथ-मुँह दोफर किसी सूने स्थान पर पहुँचते, और घटो शकले बैठे रहते। घर आकर, खा पीकर पर्लिंग पर मधुर तक लेटे रहते। कभी सो जाते, और कभी रात-रात-भर आँसू

झोले पड़े रहते। जगदीश से भी अब उनकी विशेष बातचीत न होती।

जगदीश के लिये भी अब वहाँ क्या था ? एक दिन विष्णुरा वगैरा चौधरों ने उसने सुमेर से कहा—“आज गाँव जा रहा हूँ।”

बिना किसी प्रकार की आपत्ति किए ही सुमेर ने कहा—“कब तक लौटोगे ?”

“कुछ ठीक नहीं।” जगदीश ने उत्तर दिया।

सुमेर फिर कुछ न बोले। जगदीश चला गया।

सुमेर ने वह घर छोड़ दिया, क्योंकि इतना किगया अब वह न दे सकते थे। एक छोटी-सी कोठरी में गुजर करने लगे। थोड़े ही दिनों में वह सूखकर कोठा हो गए। अब उनसे दफ्तर का काम भी न होता था। अतः का मैनेजर ने बीगकर उन्हें अलग कर दिया।

सुमेर यह सब पहले ही से जानते थे। उन्हें नाकरी छूटने का रज न था। उनकी जमानत का रूपया उन्हें वापस मिल गया।

एक दिन उमरा में आकर उन्होंने कुछ देश तथा समाज की सेवा करने की ठानी।

फार्मिस के मंत्री के पास जाकर एक दिन उन्होंने कहा—“क्या मैं कुछ सेवा कर सकता हूँ ?”

उन दिनों फार्मिस की धूम थी। मायाग्रह-आडोलन जोंगों पर दिखा हुआ था। मंत्रीजी को स्वयंसेवकों की आवश्यकता थी। उन्होंने सुमेर को सिर से पैर तक देखकर कहा—“अच्छी बात है। किन्तु जेल जा सकोगे ? सारे सुन्नों का त्याग करना पड़ता है देश-सेवा के लिये।”

सुमेर ने उत्तर दिया—“आप निर्गुण रहें। मैं फार्मिस पर

चढ़ने में भी आनाफानी न करूँगा । किंतु आपको मुझे सासारिक बंधन से मुक्त करने के लिये एक उपकार करना पड़ेगा ?”

“क्या ?” कहकर मंत्रीजी ने उनकी ओर गौर से देखा ।

सुमेर ने अपने फटे कपड़ों के भीतर से एक नोटों का पुर्तिका निकालकर मंत्रीजी के आगे धर दिया ।

मंत्रीजी ने साश्चर्य उनके मुँह की ओर देखते हुए कहा—“य क्या ?”

“ये हैं २,००० के नोट । मेरे साथ-ही-साथ आप इसे भी देश की संपत्ति समझ लें । यत ।” सुमेर ने हाथ जोड़ते हुए कहा ।

मंत्रीजी उनके मुँह की ओर देखते रह गए । बोले—“क्या आश्चर्य में रहोगे ?”

“जहाँ आप स्थान देंगे ।” उन्होंने उत्तर दिया ।

सुमेर का प्रायश्चित्त आरंभ हो गया था । वह जुटकर काम का कार्य करने लगे । उन्होंने देहातों में घूम-घूमकर धर्म का संगठन किया । थोड़े ही दिनों में वह चारों ओर प्रसिद्ध हो गए । वह जमींदारों की आँखों में काँटों की तरह चुभने लगे ।

राजगाँव के कारिदा मनोहरसिंह ने एक दिन उनसे भेंट करके कहा—“आप अपने लिये काँटे यो रहे हैं पंडितजी । आप अपने घर के लड़के हैं, आपको यह मंत्र शोभा नहीं देता ।”

सुमेर ने मुस्कराकर कहा—“मैं तो काम का एक निपटारी-मात्र हूँ । अच्छा हो, यदि आप अन्य नेताओं से बातचीत करें । मुझे तो अपना कर्तव्य पालन करना है ।”

मनोहरसिंह ने कहा—“हमारे मालिक तो न्याय ही रहे हम-दिल आदमी हैं, लेकिन देखता हूँ, आप लोग भी भले ही आदमी

क पीछे जाय तौर से पद जाने हैं । यहाँ आग्नेय-काग्नेय की कुछ चलेगी नहीं ।”

हमकर सुमेर ने कहा—“अच्छा ठाकुर साहब ! अब इजाजत दीजिए ।”

सुमेर चल दिए । उनके चले जाने पर मनोहरसिंह ने अपने मानहत्तों के आगे नुछ पर हाथ फेरते हुए कहा—“मार मालों को गिरा दूँगा एक दिन । टरू वं आदमी और लड़ने चले हैं हमारे मालिकों से । न-जाने कहाँ से आ भी तो जाते हैं । 'देश का सुरदा और नानामऊ का घाट ।' हत्तेरे जमाने की ।”

प० रामाधार नमायू मुँह में धरते हुए बोले—“मुदा है आजु-काहि कागरेम का जोरजार । किमान ताँ जानी पगलाय अहम उठे हैं । पैसा बसूल होय के एको लच्छन दिग्गड नाहीं परत ।”

बुध्वा बोला—“ठीक कहत हो पडित । याको छटाम का डौला नाहीं दगि परत ।”

फुल्लाकर मनोहरसिंह ने कहा—“यह नय मालिकों की डिलाई है, नहीं तो मारे जूनन के बाद गजों कड दोन जाई । काहे रे बुध्वा ! हम सुना है, तू ही कागरेम का मेयर बन गया है । काहे रे ?”

बिटपिटकर बुध्वा ने कहा—“नाहीं ठाकुर ! हम आगरेम-कागरेम का जानी । उद् दिन सबे पाछ पड़िके चारि आना लै लीनेनि । और हम काया मा न आहिन ।”

“अबे माले, तब और कैमे मेयर बनत है । देख तो, नेरे याको रही रह जाय ।” ठाकुर साहब ने झों पीसते हुए कहा ।

बुध्वा धुप रह गया । ठाकुर चले गए । प० रामाधार ने कहा—“मायूम पडि जाई मय आँटा-डाल फेर भाय । यहुन तोड सुखाइन है ठाकुर । कागरेम भरि देखे पत्ती सब मो ।”

बुधुआ बोला—“बड़ा जोर है कागरेस का पडित । अब पूछो, कैसे न बनीं सेवर ?”

मिर हिलाकर रामाधार बोले—“ठीक कहत हों । डरघो न ठाफ़ा ते । कइ का लेई नार ?”

“हम नहीं डेराहत हैं ।” बुधुआ बोला—“तनिक तमाख़ां देव, मुंह फिकर रहा है ।”

[२१]

गाँव गाँव में आदोलन छिड़ जाने से कुंवर यही कठिनाई में पड़ गए । सारी ज़मींदारी में एक छोर से दूसरी छोर तक आग लगी हुई थी । कारिंदों के जुल्म से गियासत तग थी । कुंवर ने लाख सुधार के प्रयत्न किए, किंतु पियादे से लेकर मैनेजर तक जब सभी डाकू और लुटेरे हो, तो फिर स्थिति का सँभालना मुश्किल हो जाता है । कुंवर ने सभी कारिंदों को आज्ञा दे रखी थी कि झ्यादती या अन्याचार न होने पाये, किंतु मुँह पर हाँ हुज्जरी के और कोड़े भी परिवर्तन कर्मचारियों के रवैए में नहीं हुआ । कुंवर यदि उन लोगों पर कड़ाई के साथ शासन करते, तो सभ्य था, कुछ सुधार होता, किंतु उनके आचम्यकता से अधिक दयाशील होने से ऐसा न हो सका । जिनके बारनामे पढ़े भी गए, उन्हें भी चैतायनी देकर छोड़ दिया गया ।

आग सुलगती ही रही । ज्यों ही कायेस ने पत्नीता दिग्वलाया, ग्यो हो वह एक साथ भभक उठी । चारों ओर से लगान घंटी, मगहन और सव्याग्रह की गैज टठने लगी ।

कुंवर का हायाल था कि उनके राज्य की ज़मींदारी में सभी तरह का घमन है, किंतु एकाएक आग लगी देखकर उन्होंने औरन् मैनेजर को मलय किया ।

मैनेजर मैनेरेश था, और नाम था मि० घाउन ।

सादर के आने पर कुंवर ने पूछा—“यह सब इगामा कैसा ?”

“थोड़े बात नहीं । सब ठीक हो जायगा ।” मि० घाउन

बोले—“हम सब चार दिन में ठंडा कर देंगे। कांग्रेसवाले भागे भागे फिरेंगे।”

मि० ब्राउन समझ रहे थे कि अन्य ज़मींदारों की भाँति कुवेर को भी कांग्रेस से नफ़रत होगी, अतएव कांग्रेस की उराई करके साहब ने उन्हें खुश करने की चेष्टा की।

कुवेर को साहब की बात कुछ अच्छी नहीं लगी। उन्होंने कहा—“लेकिन यह सब हुआ क्यों? रियाया चाहती क्या है?”

“वे सब बहुत बदमाश हैं। कुछ देना नहीं चाहते। हम सबको ठीक करेंगे।” साहब बोले।

“बिजरपुर में हालत बहुत ख़तरनाक है। जाइए, चहो हज़ारों कीजिए। जाइए, लौटकर मिलिएगा।” कहकर कुवेर थढ़ चले गए।

किरण ने कहा—“साहब बेचारा तो बहुत अच्छी तरह से याद करता था, लेकिन तुम देदे ही हुए जाते हो।”

सूखी हँसी हँसकर कुवेर ने कहा—“ये साले अपने को बाइमराप से कम थोड़े समझते हैं। अपनी ज़तानी तो कहेंगे नहीं, कांग्रेस की कोमने लेंगे।”

“मगर ये कांग्रेसवाले हमारे पीछे क्यों पड़े हैं। हमसे-ठनमे वास्ता? ‘मान न मान, मैं तेरा मेहमान।’ खूब रही साहब।” किरण ने किंचित ग़िबड़कर कहा।

“कांग्रेस कोई बुरी चीज़ थोड़े ही है। तुम तो वास्तव में हमारे अपने ही आदमी हैं, जो रैयत को गुश नहीं रख सकते। कांग्रेसवालों का क्या क्रूर?” कुवेर ने जवाब दिया।

“अच्छा, हमारे आदमी बुरे हैं या भले, देखा है या रानम, हमने कांग्रेस को क्या?” किरण ने कहा।

“यह बात नहीं। कांग्रेस का तो कर्गव्य है कि वह जनता की

भलाई करे, और हमीलिये वट कर भी रही है।" कुवेर ने उत्तर दिया।

"तब यह कहो कि आप भी कामेसमैन हैं। यह बात है। तब मित्री मय धूल में जायदाद।" किरण ने मुँह बनाकर कहा।

"अरी पगली! जितने हिंदुस्थानी हैं, सभी कामेसमैन हैं। सभी देश की भलाई चाहते हैं।" कहते हुए कुवेर बाहर चल दिए।

किंतु किरण की समझ में न आया कि जो कामेस हमारा इतना सुश्रमान कर रही है, उससे इन्हें इतनी लगन क्यों है।



अब को बिजौरपुर की समस्या ने भीषण रूप धारण करके ही खोड़ा। मि० घाउन के किए-धरे कुछ न बन पड़ा। ज़मींदार के नौकरों और कर्मचारियों का भीषण रूप से सामाजिक चहिकार भी था।

• शांत में दमन शुरू हुआ। निरीह और नि शस्त्र जनता की खोप-दिया पुलिस की लाठियों से तड़ाकड़ दड़ने लगी। मि० घाउन ने दमन की हड कर दी। घरों में घुम घुमकर औरतों-बच्चों को पीटा तथा लूटा गया, और भोपड़ों में आग लगा दी गई। सारी प्रजा में आहि-आहि मच गई। घबराकर लोगों ने मयाग्रह करने की टानी। पुलिस ने सैकड़ों को गिराफ्तार किया।

कुछ महिलाएँ भी गिराफ्तार की गईं। उनकी नेत्री जातिदेवी को भी पकड़कर हवालान में डूँस दिया गया।

जिस समय जातिदेवी पकड़कर मि० घाउन के सामने खड़ाई गई, तो उन्होंने आने से इनकार कर दिया। मि० घाउन का पारा खड़ा हुआ था, उन्होंने सिपाहियों को जबरदस्ती खींचकर लाने की आज्ञा दी।

मि० ब्राउन ने हँसते हुए कहा—“मेरे खूबसूरत छोकरों, तुम ये सब क्या कर रही हो ?”

शांतिदेवी ने गेरनी की तरह गरजकर कहा—“लानत है तुम्हारी हुकूमत और सम्यता पर ! क्या अँगरेज अँगो की इसी प्रकार बेइज्जती करते हैं ? थू है !”

मि० ब्राउन ने कहा—“तुम लोग क्यों बड़भासी करती हो ? ऊपर से गाली बकती हो ! हम तुमको सजा देगा ।”

मि० ब्राउन ने शांतिदेवी का हाथ पकड़कर अपनी ओर घसीटना चाहा । शांतिदेवी अनर्न्ध सु डरी महिला थी । मि० ब्राउन भाग्यवश को बिलायत समझ रहे थे । उन्होंने उसके दोनों हाथ पकड़कर कहा—“हम तुमको पसंद करती हैं । तुम हमारा यीर्षी बनेगी ?”

शांतिदेवी का क्रोध से बुरा हाल था, उन्होंने भरपूर ज़ोर लगाकर अपने को अलग कर लिया, और जूता टटारकर मि० ब्राउन पर टूट पड़ीं ।

जब तक निपाही ढौंढ़ें, तब तक उन्होंने दम-पाँच हाथ साहब पर जड़ दिए । साहब उनके मुँह की ओर गार्धर्च में देखते रह गए । सिपाहियों ने ढौंडकर उन्हें पकड़ लिया ।

साहब का क्रोध से बुरा हाल था । शांतिदेवी भी क्रोध में काँप रही थीं ।

मि० ब्राउन ने सिपाहियों से कहा—“इस हरामजादी को नंगा करो । हम इसके बेंट लगाएंगे ।”

निपाही साहब के मुँह की ओर देखते रह गए । साहब ने ज़ोर से पैर पटककर कहा—“देखते क्या हो ? नंगा करो, नंगा करो ।”

सिपाहियों ने एक दूसरे की ओर देखा, और चुपचाप शांतिदेवी के चूखों पर हाथ डालना शुरू किया ।

शांतिदेवी अब बड़े कष्ट में पड़ीं । उन्हें कोई बचानेवाला न था ।

बढ़ भरपूर जोर लगाकर अपने कपड़ों को बचाने लगीं। बिपाही भी जान बूझकर बख्ख उतारने में ढेर कर रहे थे।

‘जल्दी करो!’ साहब ने चिल्लाकर कहा।

बिपाहियों ने शांतिदेवी की धोती पकड़कर खींचना शुरू किया। श्रद्धा नगना-भी शांतिदेवी ने धोती से लिपटकर अपने को बचाने की चेष्टा की। कोढ़े और उपाय न देखकर उन्होंने साहब से ही प्रार्थना की। साहब ने हैमकर कहा—“तुम घोट सराय औरत है।” (बिपाहियों से) “अच्छा, छोड़ दो।”

बिपाहियों ने जो पाया। शांतिदेवी के सारे बख्ख फट चुके थे। वह चुपचाप एक कोने में जाकर खड़ी हो गई। उस समय वह कि-कर्मचारी-धिसूढ़ थीं। साहब कुरमी पर बैठे हुए मुस्किरा रहे थे।

थोड़ी देर में एक कर्मचारी ने आकर सूचना दी कि शांतिदेवी का छूटने के लिये आठे हुए एक उत्तेजित भीड़ ने थाने में आग लगा दी है।

मि० घाटन के पैरो के नीचे से मानों धरती-भी खिसक गई। उन्होंने घबरावर नौकरों से कहा—“इस औरत को बाहर निकाल-पर फौजी का फाटक पौरन् घड़ परो।

शांतिदेवी अन्य महिलाओं के साथ बाहर कर दी गई, और फाटक बंद कर दिया गया। उस समय बड़ी ज़ोंगे का कोलाहल सुनाई दिया, और एक बहुत बड़ी भीड़ रोटी की प्यार आती हुई दिखाई दी। शांतिदेवी ने समझा, सब परिस्थिति बड़ी भयानक है, फिर भी उन्होंने निश्चय लिया कि मैं जनता को शांत करूँगी। ‘शांतिदेवी जिन्याबाद’, ‘जर्मोदारी का नारा हो’ आदि नारों के साथ भीड़ जर्मोदारी की फौजी के सामने आ पहुँची। शांतिदेवी का देखते ही जनता आह्लादित हो उठी। लोगों ने थाने और में दमों घेर लिया और गुल्लक जय-घोष से आकाश गुँजने लगा।

“बदमाश मैंनेजर कहाँ है ?” उत्तेजित भीड़ से आवाज़ आई ।

पहले तो शातिदेवी घबरा गईं, फिर उन्होंने माहम से काम लिया । उन्होंने हाथ उठाकर जनता से शात रहने को कहा । भीड़ शात हो जाने पर एक ऊँचे टीले पर चढ़े होकर शातिदेवी ने कहना शुरू किया—

‘भाइयो,

हमें प्रत्येक दशा में शात रहना चाहिए । अत्याचारों का अन्त अहिंसा के ही शस्त्र द्वारा किया जा सकता है । रक्त-पात द्वारा आपको अधिकार न मिलेंगे । यदि आपने हिंसा का आश्रय लिया, तो आप कुचल दिए जायेंगे, और आपका आंदोलन मदा के लिये असफलता की गंगा में डूबा जायगा । और, यदि आप शांत रहे, तो . . .”

भीड़ से आवाज़ आई—“हम कब तक शात रह सकते हैं ? हमारी बहू-बेटियों पर हाथ छोड़ा जाता है ।”

शातिदेवी ने उच्च स्वर से कहा—“बिना त्याग के मरार में कुछ नहीं मिल सकता । हमें सारे अत्याचार सीना खोलकर सहन करने चाहिए ।”

इसी बीच में पीछे की ओर से हल्ला मचने लगा । लोग डधर-उधर भागने लगे । ‘पुलिस पुलिस’ की चारों ओर से आवाज़ें आने लगीं, और थोड़ी ही देर में एकत्र तथा भागती हुई जनता पर लाठियों की बौझार होने लगी । पीछे से गोलियाँ भी चल पड़ीं । लोग कुत्तों की मौत मरने लगे । थोड़ी ही देर में मैदान माफ़ हो गया, केवल लाशें और मरणावन्न लोग ही दिखलाई पड़ रहे थे ।

पुलिस ने लगभग १०० व्यक्तियों को गिरफ्तार भी कर लिया, जिसमें शातिदेवी भी थीं । सारा गाँव अज्ञान मानूस पड़ने लगा । पुलिस और जर्मिटार के आदमियों का शांत-रू चारों ओर दया

हुशा था। जनता भयभीत थी। नेता लोग डूँढ़-डूँढ़कर पकड़ लिए गए। सारा आंदोलन टूट्टा पड़ गया।

जिस दिन यह दुर्घटना हुई, उसके दूसरे ही दिन कुंभेरचट वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने आंदोलन और दमन की सारी कहानी सुनी, जिससे उन्हें बड़ा दुःख हुआ। मि० घाटन के शिष्याचार की कहानी सुनकर उन्हें गीम भी हुआ और क्रोध भी।

दूसरे ही दिन से उन्होंने घर-घर घूमकर लोगों को सहायता देने का निश्चय किया, किंतु लोग घर से बाहर निकलते हुए भी डरते थे। कुंभेर ने चुने हुए स्पर्शियों को अपने साथों हट्टा करके उन्हें शान्तासन दिया। किंतु उन्होंने स्पष्ट कहा कि जब तक हमारे आदर्शों जेलों से मुक्त न कर लिए जायेंगे, और मि० घाटन के कार्यों की निंदा जोध करके उन्हें ठट्ठ न दिया जायगा, तब तक जनता का विश्वास उन पर नहीं जम सकता।

उसी दिन शाम को कुंभेर ने मि० घाटन को बुला भेजा। कुंभेर ने देखा, इतना बड़ा पैशाचिक कांड करने के बाद भी उसके चेहरे पर हारा भी छिपन नहीं था।

कुंभेर ने कहा—“बड़े दुःख का विषय है मि० घाटन कि तुमने अपने शिष्यों से गांव-का-गांव उजाड़ दिया। क्या इसी प्रकार शक्ति स्थापित की जा सकती है? तुम्हारे कार्यों की जाँच की जायगी।”

मि० घाटन ने लाजवश कुंभेर की ओर देखकर कहा—“घाप क्या कर रहे हैं। मैं बड़ी गुप्तिकल से पब्लिक को उन्नत में मकान हो सका हूँ। अब”

कुंभेरचट थोड़ा उत्तेजित होकर बोले—“शस्त्री शक्ति स्थापित की आपने। शायद शिष्याचारों की कहानी सारे देश में फैलकर मेरी राज प्याका कहलानी। शायद लिये यह भोले लोग की बात है!”

मि० घाटन हट्ट न समझे। कुंभेर ने गगन किया कि मैं इनके

विरुद्ध अवश्य कार्रवाइ करूँगा। उन्होंने कोशिश करके गिरफ्तार किए हुए सभी व्यक्तियों को छुड़वा दिया।

ग्राम की जनता की ओर से एक बड़ा भारी सार्वजनिक सभा की गई, जिसमें सभाप्रहियों की प्रशंसा और अधिकारियों की निंदा की गई। सभा में बोलते हुए डाक्टर रामसिंह ने कहा—“भाइयों, सारी करतूत हमारे अंगरेज गवर्नर की हैं। हमारे ज़मींदार साहब तो अच्छी प्रकृति के आदमी हैं। वह तो हमसे समझौता और सहायता करना चाहते हैं।”

श्रीमदनमोहन ने रामसिंह की बात का समर्थन किया। थोड़ी देर में शांतिदेवी बोलने के लिये खड़ी हुई। दर्शकों ने करतल-ध्वनि की।

शांतिदेवी ने रगमच से बोलते हुए कहा—“आप लोगों ने ज़मींदार महोदय की भूरि-भूरि स्तुति की है। मैं आप लोगों को बतला देना चाहती हूँ कि आप गलत रास्ते पर हैं। ये ज़मींदार स्वयं तो सब कुछ करते हैं, किंतु उसका ढोंप कर्मचारियों पर लादते हैं। गाँव में इतना बड़ा रक्त-पात हो जाने पर भी कर्मचारियों के विरुद्ध कोई कार्रवाइ नहीं की गई। वे आज भी मृच्छा पर ताव देकर हमारे आंदोलन की खिल्ली उड़ा रहे हैं। मुझे नहीं मालूम कि आप ज़मींदार की किस बात पर लट्टू होकर उनका गुण-गान कर रहे हैं। हम तो जीवन-भर साम्राज्यवाद के इन स्तंभों के विरुद्ध लड़ेंगे, चाहे हमें अपना सब कुछ बलिदान कर देना पड़े।”

प० रामसिंह ने खड़े होकर कहा—“किंतु ज़मींदार ने हम लोगों को समझौते की बातचीत करने के लिये आमंत्रित किया है। उनसे क्या कह दिया जाय?”

शांतिदेवी ने कहा—“तो आप लोग उनसे स्पष्ट बात क्यों

नहीं करते। आप लोग उनसे कह दीजिए कि हमारा और जनता किसी प्रकार का सम्बन्धना असम्भव है। हम तो ज़मींदारी-प्रथा का अंत चाहते हैं।”

जनता ने कातल-पुनि की। शान्तिदेवी ने उच्च स्वर में कहा—
“यदि आप लोग बात करने से डरते हैं, तो मैं उनसे बात करने को तैयार हूँ।”

अंत में यह तय हुआ कि ठाकुर रामसिंह, प० मदनमोहन और शान्तिदेवी का एक डेपूटेशन ज़मींदार से मिलकर बातचीत करे। जनता की मांगों की गुरु सूचा बनाई गई, जिसमें निम्न-लिखित बातें रखी गई—

(१) गोला-फाड़, लाठी-चार्ज तथा अन्य अपराधों की जांच की जाय, और कर्मचारियों को दंड दिया जाय।

(२) मि० ब्राउन को मैनेजर के पद से पृथक् कर दिया जाय, तथा उनके विरुद्ध मामला चलाया जाय।

(३) किसानों की जो कुछ सति हुई है, वह पूरी की जाय।

(४) लगान आधा किया जाय, और बेगार बंद कर दी जाय।

(५) लोगों का नागरिक मनप्रवा दी जाय।

दूसरे दिन सबेरे यह डेपूटेशन ज़मींदार से मिलने के लिये रवाना हो गया।

[२२]

कुचेर ने सोचा, मुझमें धन और ऐश्वर्य का मद तो नहीं आ गया। अवश्य, यह मद नहीं, तो क्या है ? मेरा यह कर्तव्य था कि मैं निरीह व्यक्तियों की हत्या रोकता। किंतु—किंतु यह कैसे हो सकता था ? अशिक्षित जनता पर शासन करना हँसी-खेल नहीं। कमबलत मानते ही नहीं। पूछिए, लगान न देंगे, तो रुपया वहाँ से आयागा तो क्या फिर रुपयो के लिये ही हत्या ? हाय ! धन का यही तो अभिशाप है। आज न-जाने कितनी माताएँ मेरे नाम पर घृणा के आँसु बहा रही होगी ? बड़ा उरा हुआ। यदि मैं वहाँ जा सकता, यदि उन्हें समझा-बुझाकर राजी कर सकता, तो किंतु नर्म गहो पर आराम ले लेते हुए मुझे वहाँ जाने की चिंता क्यों होती ? हाय धन ! तूने—तूने तो गौरवही धन के कारण भाई भी तो मरने के लिये चला गया। आदि इस ऐश्वर्य में था क्या ? धन्य हैं वे लोग, जो देश के लिये अपना रक्त बहाकर अमर हो गए ! मैं तो महिलाओं से भी गया-गुहा हूँ। हाँ, देवों, जहाँ जानिदेवी-ऐसी स्त्रियों मौजूद हो, वहाँ देशों-द्वार क्यों न हो। ऐसी ही वीर स्त्रियों से देश गौरवान्वित हो गया। इनका दृढिदाम स्वर्णचरो में लिखा जायगा। और मैं ... मैं अपना सारा जीवन यो ही नष्ट कर दिया। कितनी उमंगों और आशाओं को लेकर जीवन-मग्न मैं आया था, किंतु

समझो कुचेर ! अभी समय है। आओ, अब भी तुम ग्यामदप के पथिक बनकर अपने ध्येय का लाभ उठा सकते हो। मित्र

यदि तुममें त्याग की प्रचुर मात्रा लहरें नार रही हो, तब । नहीं तो ।

नौकर ने आकर टेपूजेन के आने की सूचना दी । कुवेर उठे । उन्हें ज्ञान न था कि यह क्या बात करेंगे । उन्हें अपने में उदता का अभाव मालूम पड़ा । उन्होंने मोवा, चनो, हमी बहाने गाँव की टय देवी के दर्शन लिये, जिसने अपनी उत्कृष्ट गमना में लोगों में नया जीवन पैदा कर दिया है ।

कुवेर उस कमरे में पहुँचे, जहाँ तीन व्यक्तियों का छोटा सा टेपूजेन मार गाँव के भाग्य का निपटारा करने की प्रतीक्षा में बैठा था । कुवेर ने एक भरपूर नज़र से श्रद्धा के भाव से उन गयन्त्रियों को देखा—किन्तु यह क्या ?

कुवेर जब टोकर खड़े रह गए । उनके मुँह में एक गन्ध भी न निकला । यह एकटक शक्तिदेवी के मुग्ध की ओर देखते रह गए, और शक्तिदेवी एक चौर के साथ मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी । कुवेर के मुँह में एक गन्ध न निकला ।

टेपूजेन के अन्य व्यक्ति ने दौड़कर, शक्तिदेवी को उठाकर कमरे पर लिटा दिया । कुवेर ने नौकर को पानी लाने की आज्ञा दी । डा० गमनिह ने कहा—“मानून पड़ता है कई दिन से अत्यधिक परिश्रम करने में देवीजी को गलत आ गया है ।”

कुवेर ने छांटों पर डँगली रखते हुए कहा—“चुप रहिए । सब ठीक हो जायगा । बिना ही काँटे बाग नहीं ।”

एक नारर शक्तिदेवी के बिरहाने पड़ा माल रहा था । कुवेर भीला करता उनके मरने पर स्वरूप मुँह पर पानी की छोट डेने लगे ।

छांटों पर में शक्तिदेवी ने छाँवे मोली, और उपस्थित व्यक्ति को और दूरतर ओर से बढ़ कर ली ।

कुघेर ने कहा—“आप इन्हें यहीं विश्राम करने दें। काम की बातें फिर होगी, इस समय इन्हें पूरा विश्राम चाहिए। आप लोग जाइए, इन्हें यहाँ कोई कष्ट न होगा।”

मदनमोहन तथा डाकर रामविह ने एक दूसरे के मुँह की ओर देखा, और धीरे से उठकर बाहर चलने लगे।

कुघेर ने कहा—“देखिए, यह बात जनता पर न प्रकट होने पाए, नहीं तो फिर दगा मचने से इन्हें कष्ट होगा।”

दोनों चले गए। उनके साथे पर हाथ फेरते हुए, कुघेर ने कहा—आशा ! अब तुम्हारा जी कैसा है ?”

आशा ने आँखें मीलीं। कुघेर को निकट देखकर उसने कहा—‘कुघेर दादा ! तुम मुझे स्पर्श न करो। मैं इस योग्य नहीं हूँ। हटिए, आप हट जाइए।’

कुघेर ने धीरे से कहा—“चुपचाप विश्राम करो। तुम्हारी तबियत ठीक नहीं है आशा।”

आशा ने फिर आँखें बंद कर लीं। गायत्री उसे नींद आ गई। थोड़ी देर बाद नींदर को पंखा चलाने का आदेश देकर कुघेर वहाँ से चले गए।

आशा दिन-भर लेटी रही। शाम को उसे उत्तार चढ़ आया। कुघेर ने आकर देखा, ताप-मान बहुत ऊँचा था।

आशा ने आँखें मीलीं। बुत्तार के कारण उसका मस्तिष्क ठिकाने न था। उसने आँखें फाड़कर कुघेर की ओर देखा।

“कैसा जी है आशा ?” कुघेर ने निकट जाकर पूछा।

“आप कुघेर दादा हैं ?” आशा। थड़थड़ाहट—“नहीं, आप नहीं हैं, आप—आप तो बड़े आदर्श हैं, जमींदार हैं—मेरे कुघेर दादा, मेरे कुघेर दादा—न न न—आप—आप मेरे कुघेर दादा नहीं हैं”

मुँह पर हाथ रखकर कुंवर ने कहा—“सुप रहो आशा । विश्राम करो । मे ही तुम्हारा कुंवर दादा हैं ।”

“आप—आप—आप !” आशा ने आँखें फाड़कर उठने की चेष्टा करते हुए कहा—‘आप मेरे कुंवर दादा हैं ! मेरे कुंवर दादा ! हे—मेरे कुंवर—मेरे स्वामी—प्राणनाथ’ काँते-कहते खीम निकालकर आश्चर्य की मुद्रा प्रकट करती हुई पकाएक आशा सुप हो गई ।

“मों जाओ । घात करने में तयियत कराव हो जायगो ।” कुंवर ने उसे लिटाते हुए कहा । .

“न-न-न, तुम मेरे कुंवर दादा ! मैं तुम्हारी—मैं तुम्हारी आशा—गा—गा—मेरे कुंवर दादा ! सुनो बचाओ । मुझे आश्रय दो । तुम मेरे स्वामी ! मेरे” काँती हुई आशा एकदम उठकर कुंवर के पैरों पर गिर पड़ी ।

“क्या करती हो आशा ? क्या लड़कपन कर रही हो ? लेटो सुपचाप । नहीं, मैं चला जाऊँगा ।” कुंवर ने उसे ज़बरदस्ती बिस्तरे पर लिटाते हुए कहा ।

तण-भर आशा सुप रही, फिर लेटे-ही लेटे बोली—“मैं—मैं—अब मुझे नहीं छूट सकती कुंवर—तुमने मुझे क्यों अलग किया ? क्यों—क्यों—न—मैंने तुमसे प्रिया किया है—तुम मुझे क्यों छोड़ोगे ? मैं तुम्हारी—तुम्हारी—आश्रिता तुम्हारी स्त्री—तुम—तुम—तुम—मुझे नहीं छोड़ साने । किन्तु”

आशा तण भर रहस्य बोली—“किन्तु—किन्तु तुम अब बड़े आदमी हो—बड़े आदमी, राजा, जमींदार । हट जाओ—हट जाओ—तुम मेरे कुंवर नहीं हो—मेरे—मेरे—नहीं, हटो—हटो ।” कहते हुए आशा ने दूसरी ओर मुँह फेर लिया ।

अबने मेसोदरी को बुलाकर कुंवर ने कहा—“तुम इसी पक्ष

रायपुर जाकर डॉक्टर चौधरी को लिया लासो । फौरन लौटना डॉक्टर को लेकर ।”

आशा बड़बड़ा रही थी । कुंभेर चढ़ी सुमीयत में पड़े । उन्होंने मयको कमरे से हटा दिया, और स्वयं आशा के पास जाकर बैठ गए ।

“तुम कौन हो जी ? उनकी गंरहाज़िरी में मेरे पास क्यों आते हो ? हटो—हटो, मुझे तुम्हारा रूपया नहीं चाहिए । भागो—भागो । छोड़ दो जगदीश बाबू, मुझे छोड़ दो ।” कहते हुए आशा उठकर भागने लगी ।

कुंभेर ने उसे दौड़कर पकड़ लिया । ज़बरदस्ती उसे पिस्तौल पर लिटाकर, उसे पकड़कर वह बैठ गए । यह कि-कर्तव्य धिम्नूद थे ।

आशा चुप हो गई । रुदाचित्त वह थककर फिर मूर्च्छितावस्था में आ गई थी । कुंभेर उस पर धीरे-धीरे पया झलने लगे ।

रात-भर बुखार की वजह से उसे उड़ी चैचैनी रही, मयरे ४ घंटे कुछ नौंद आ गई । वह १० घंटे दिन तक सोती रही ।

नौंद सुलने पर वह ज़रा शांत थी । कुंभेर ने देखा, बुखार कम था ।

लगभग १२ घंटे डॉक्टर चौधरी आए । कुंभेर को अभिवादन करके उन्होंने कहा—“कहिण, मरीज़ का क्या हाल है ?”

“कुछ पूछिण नहीं, रात-भर पुरी डगा रही । आप देखें, क्या बात है । यंत्रों से बुखार कुछ कम मालूम पड़ता है । कुंभेर ने जवाब दिया ।

डॉक्टर ने भली भाँति परीक्षा करके कहा—“हाँ, बुखार तो अब बहुत कम है, किंतु हृदय और मन्त्रिक की अवस्था बड़ी मरुटापन्न मालूम पड़ती है । कुछ उच्छेजना-सी मिली मागूम पड़ती है ।”

“तब अब क्या करना चाहिए ?” कुंभेर ने पूछा ।

“घराने की बात नहीं । इन्हें खूब विश्राम और हलका भोजन

चाहिए। इंश्यर चाहेगा, ठीक हो जायगा। अच्छा हो, यदि इन्हें रायपुर ले चला जाय।”

“हूँ।” कहकर कुचेर चुप हो गए।

ग्राम में गाँव के कार्यकर्ता मिलने आए। कुचेर ने उन्हें बतलाया कि गतिदेवी की अवस्था ठीक नहीं। डॉक्टर ने किसी से मिलने-जुलने को मना कर दिया है।

गाँववाले बहुत निराश थे। उन्हें कुचेर की बातों का भली भाँति विश्वास न हुआ, किन्तु निरुपाय थे, अतएव चुप रहे।

आशा की त्रियत दूसरे दिन से कुछ सँभलना प्रारंभ हुई। डॉक्टर ने राय दी कि अब इन्हें यहाँ से ले चलना चाहिए।

कुचेर ने आशा को पास जाकर धीरे से पूछा—“किसी त्रियत में आशा?”

उसने धीरे कहा—“अच्छी है।”

कुचेर उसके पास बैठ गए, और फिर पर हाथ फेरते हुए बोले—“रायपुर चलोगी? डॉक्टर ने यहाँ रहने को लिये मना किया है। चलोगी?”

आशा चुप रही। उसके चेहरे कुछ सजल मालूम पड़े। कुचेर ने कहा—“घबराओ मत। सब ठीक हो जायगा। चलो, रायपुर चलो।”

दो दिन बाद रायपुर चलने की सैयारी हुई। कुचेर ने माँटर द्वारा आशा को ले जाने का प्रबंध किया। दरवाजे के बाहर काफ़ी भीड़ उसे जमाने में लिये जमा हो गई। कुचेर उसे सहारा देकर बाहर आए।

हाफ़ रातभित्त न उठाने मात्र से आशा के निकट जाकर कहा—“तब आपका जो पैसा है? क्या कर लीटिंगा?”

आशा ने धीरे से कहा—“अभी कुछ ठीक नहीं।”

रातभित्त को आशा की बातों से निराशा हुई। उन्होंने फिर और कोई बात नहीं की। कुचेर आशा की सजल से लार लें बैठ गए।

मोटर चली गई ।

भीड़ तितर-बितर हो गई । लोग परस्पर नाना प्रकार की बातें करते जा रहे थे ।

एक वृद्ध ने कहा—“सेवा का मार्ग थड़ा कठिन है ।”

दूसरे व्यक्ति ने कहा—“विरले ही अपने विचार से रुढ़ होने हैं ।
मृत और प्रलोभन का जन्म-जन्मांतर का चर हैं ।”

एक पढ़े-लिखे सज्जन बोले—“अजी, श्रीरत की ज्ञात का क्या विश्वास ? वह तो कच्ची मिट्टी का घड़ा है घड़ा ।”

राममिह एक सॉम लेकर चुप हो गया । उसकी विचार-धारा तीव्र तथा लची थी । वह निराश-या मालूम पड़ता था । वह सोचने लगा, देखें, कब तक लौटती हैं ।

वह आशा से प्रेम करता था ।



[२३]

मुमेर में अथ काफ़ी परिवर्तन हो, चला था। देश-सेवा ने उसे पुद्ग-का-कुद्ग बना दिया था। अथ वह अपनी गलतियाँ अनुभव कर रहा था। और वह मय है कि जो मनुष्य अपनी गलतियों स्वीकार कर लेता है, वह भविष्य में अतीत से भी बढ़कर विचारशील तथा सफल व्यक्ति हो उठता है। वह अथ कुमेर को समझ रहा था। उसने सोचा, वह अपने जीवन में सदैव असफल रहा है—वह असफल भाई, असफल पति, असफल गृहस्थ तथा असफल प्रेमी रहा है। उत्तेजना तथा भावुकता में पड़कर उसने अपना सारा जीवन बरबाद कर डाला।

वह सबको भूल रहा था। उसे इस प्रवचना-पूर्ण ससार में अथ किसी के प्रति छद्म प्रेम न था। यह सबको भूल जाना चाहता था। छह वर्ष राजनीतिक बन्दी रहकर उसने अपना प्रायश्चित्त कर डाला था। उसके हृदय में किसी के भी प्रति छय राग-द्वेष न था। अपने वर्तमान जीवन में वह सुन्नी था, किन्तु . . .

वह याज्ञा को न भूल सका। उसके प्रति किए गए अन्याय को याद करके कभी-कभी उसके शांत हृदय में एक चिनगारी-सी जलती मानून पड़ने लगती थी। न-जाने क्यों वह उससे एक बार मिलकर अपने गुणों पर रोश प्रकट करके समाया चाहता था। किन्तु उससे विश्वास था कि इस जीवन में अथ कभी उससे भेंट न हो सकेगा।

किन्तु प्रायश्चित्त ? यह हो रहा था। प्राय मानव जीवन में हमारी वसति-विधा है हमारे भविष्य को प्रभावित करती गती

हैं। जो लोग यह अनुभव करने लगते हैं कि हमारे दुर्भाग्य का कारण हमारी कमज़ोरियों ही हैं, वे सफलता के मोपान के निकट पहुँचने लगते हैं। प्रायश्चित्त ही इसकी पहली सीढ़ी है। सुमेर का प्रायश्चित्त हो चुका था, किन्तु आगे बढ़ने के सारे साधन वह तो चुका था।

एक दिन वह बिना किसी से कहे-सुने काशी चला गया। उसने सोचा, अब वह कुछ दिन वहीं शांति-लाभ करेगा। उसने नगर-काप्रेस-कमेटी के आश्रम में अपने कपड़े लत्ते रखे तथा गगान-तट पर चल दिया।

दो सप्ताह वहाँ रहकर उसे बड़ी शांति मिली। एक दिन दशरथमेघ-घाट पर सन्ध्या के समय वह युर्ज पर बैठा हुआ ध्यान ले रहा था कि पास ही नीचे स्नान करती हुई एक शपेद-मी स्त्री पर उसकी दृष्टि पड़ी। वह स्त्री सुमेर को देखकर कुछ मुस्करा दी।

सुमेर को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसे उस स्त्री की निर्लज्जता पर बड़ा घोभ हुआ। सुमेर ने उधर से दृष्टि हटा ली। स्नानादि के पश्चात् वस्त्र बदलकर वह सुमेर के पास युर्ज पर आकर बोलो—
“आप यहाँ के रहनेवाले हैं?”

सुमेर ने उसके मुँह की आर गौर से देखते हुए कहा—“मैं? नहीं .. मैं बाहर का रहनेवाला हूँ।”

“तभी—तभी—तभी तो” वह मुस्कराते हुए बोली—“मैं तो पहले ही समझ गई थी। मैं तो—मैं तो . . .”

बात काटकर सुमेर ने कहा—“आप चाहती क्या हैं?”

“मैं—मैं—मैं क्या चाहूँगी तुमसे? मगर हाँ! अन्धा, चली।” कहती हुई मुस्कराकर वह चली गयी।

सुमेर देखता ही रह गया। स्त्री शपेद अवश्य थी, किन्तु इस

अवस्था में भी उसे सुंदरी कहा जा सकता था। वह बार-बार सुमेर की ओर मुस्किराती हुई चली गई।

सुमेर उठकर आश्रम की ओर चल दिए। उन्होंने सोचा, प्राणी में जहाँ पुण्य है, वहाँ पाप भी। अब यहाँ अधिक ठहरना उचित नहीं।

दूसरे दिन सुमेर ने चलने की तैयारी कर दी। गंगा स्नान करके जैसे ही वह सीढ़ियाँ चढ़ने लगे, पीछे से किसी ने उनका हाथ पकड़ लिया। उन्होंने पीछे घूमकर देखा। वही कलवाली स्त्री थी।

सुमेर ने हाथ छुड़ा लिया। स्त्री ने कहा—“क्या आप थोड़ी देर के लिये मेरे घर चलेंगे?”

सुमेर सजप चणार में पड़े। स्त्री ने गिड़गिड़ाकर कहा—“मेरे पति पत्नी विपत्ति में हैं। क्या आप—क्या आप ज़रा मेरे साथ चलेंगे?”

पहले कुछ माच-विचारकर सुमेर उसके साथ चल दिए। बहुत-भी गलियों में घुमायी हुई वह सुमेर को एक मकान के पास ले गई।

गलियाराने पर खड़ा खुल गए। सुमेर उस स्त्री के पीछे-पीछे उस मकान में घुसे। मकान छोटा सा था। सामने एक कमरा था, जिसमें ३-४ दुबली-पतली तथा भद्दी-भद्दी पोशाक पहने हुए लड़कियाँ बैठी थीं। सुमेर उन्हें देखकर दरवाज़े पर गये। लड़कियाँ उन्हें घेरकर मरी हो गईं।

जो स्त्री सुमेर को लाई थी, वह पीछे धड़ी-धड़ी हँस रही थी। सुमेर ने अचानक पूछा—“तुम जोग क्या चाहती हो?”

लड़कियाँ गिड़गिड़ाकर हँस दीं। सुमेर विचित्रानेने ही

रहे थे । उन्होंने उस स्त्री से कहा—“तुम सुमेर यहाँ क्यों लाई हो ?”

स्त्री ने ज़मते हुए कहा—“लाई, तो क्या कुछ गुनाह किया ? ये सब तुम्हारे ही लिये तो हैं । जिसे चाहो, चुन लो ।”

सभी लड़कियाँ सुमेर को अपनी-अपनी ओर खींचने लगीं । सुमेर ने झल्लाकर, उन्हें धक्का देकर दूर हटा दिया ।

“अच्छा, इधर आओ ।” उस स्त्री ने सुमेर को अपनी तरफ खींच लिया, और एक कोने में ले जाकर कहा—“मैं भी क्या तुम्हें पसन्द नहीं हूँ ? आओ, मेरे साथ बैठो ।”

सुमेर कठपुतली-से बैठ गए । बड़ी गौर से देखने पर सुमेर के दिल में बार-बार यह बात आती थी कि मैंने इस स्त्री को क्यों देखा अचानक है । उन्होंने कहा—“तुम मुझसे क्या चाहती हो ?”

“अब भी नहीं समझे ? बाहर से भौंने ।” कहते हुए उसने सुमेर के गले में अपने दोनों हाथ डाल दिए ।

सुमेर ने उसे कमफर धक्का दिया, और अपने को अलग कर लिया ।

“बदज़ात, धोखा देकर यहाँ ले आई, और अब इस प्रकार की हरकतें ?” सुमेर ने दरवाज़ा खोलने की चेष्टा करते हुए कहा । किन्तु दरवाज़े पर ताला लटक रहा था ।

“दरवाज़ा खोलो, मैं जाना चाहता हूँ ।” सुमेर ने कहा ।

इतने ही में किसी ने बाहर से दरवाज़े पर धक्का दिया । उस मर्दाने ने पूछा—“कौन ? रघुवर ?”

“हाँ ।” बाहर से आवाज़ आई ।

झिंझ झुल गए । सुमेर ने देखा, उन्हीं की तरह व तीस-चार आदमियों को लिए हुए एक लम्बा-चौड़ा काला सा शान्सी अंदर घुसा ।

दरवाजे के अंदर पहुँचकर उस आदमी ने उस स्त्री से कहा—
“प्रभा, ले इनको अंदर पहुँचा उन लड़कियों के पास।”

माँका देखकर सुमेर वहाँ से निकल भागे।

२

६

८

सड़क पर पहुँचकर सुमेर ने साँस ली। उन्होंने समझ लिया कि वह स्त्री प्रभा के पिता और कोई न थी। और जहाँ खुश है। क्या दशा हो गई है इस स्त्री की भी आज। स्त्री कितना गिर सकती है। इतने बड़े यन्त्र-कुपेर की स्त्री भी इतना घगित व्यवसाय कर सकती है ?

सुमेर ने अपना कर्तव्य निश्चित करना शुरू किया। क्या इनका उद्धार संभव हो सकता है ? और फिर कैसे ?

दूसरे दिन वह दोपहर को ठसी न्थान पर फिर पहुँचे। यद्यपि उनके हृदय में एक प्रकार का भय-या था, फिर भी साहस करके उन्होंने दरवाजे पर धक्का दिया।

‘कीन ?’ अंदर से आवाज़ आई।

‘हाँ है, याइजी है।’ सुमेर ने धीरे से उत्तर दिया।

धीरे से किवाड़ खुल गया। गोलनेवाली स्वयं प्रभा थी। वह मुस्मिराई।

सुमेर ने जब उसे भली भाँति पहचाना। वह यादगार में प्रभा ही थी।

‘क्यों, जहाँ गई नमियत दिवाने पर ? कम घड़ी जगड़ी भाग गई तुम से ?’ वह हैसकर बोली।

‘कल सुदूर घर गया था। नई बात थी न ? क्या लौटकर आ गये नया ?’ सुमेर ने यनागरी देसी हैसकर कहा।

‘आयो, अंदर चले।’ उसने सुमेर का हाथ पकड़कर नीचले हुए कहा।

“इस वक्त नहीं, शाम को। आज शाम को उसी घाट पर मिलोगी ?” सुमेर ने पूछा।

“दशाश्वमेध पर ? यहाँ आ जाना न ?” उसने कहा।

“नहीं, वहीं मिलना, फिर शँधेरा होने पर यहाँ लौट आएंगे।” सुमेर बोले।

“लेकिन निराश मत करना। मेरी तन्त्रियत तुम पर आ गड़े।” उसने एक कटाक्ष फेकते हुए कहा।

“नहीं-नहीं, जरूर। अच्छा, अब चलता हूँ।” कहकर सुमेर जाने लगे।

“अच्छा, शाम को।” उसने मुस्किराकर कहा।

सुमेर चले गए।

शाम के पहले ही सुमेर दशाश्वमेध-घाट पहुँच गए। वह प्रभा की प्रतीक्षा में इधर-उधर टहलने लगे।

वह आई। गूँथ सजी हुई थी। भाव-भगियों से युक्त। वह सुमेर को देखकर मुस्किराई।

सुमेर उसके साथ घाट में सड़क पर आए। एक घोंघा-गाड़ी पर वह प्रभा के साथ बैठ गए।

गाड़ीवाले ने पूछा—“किधर चलना होगा ?”

सुमेर ने धीरे से कहा—“कांग्रेस-कमेटी के आश्रम में।”

प्रभा ने आश्चर्य पूछा—“वहाँ क्यों जा रहे हो ?”

“अपना मामान उठाने। अब तो तुम्हारे यहाँ ही श्रद्धा जमगा।” सुमेर ने जरा हँसते हुए कहा।

प्रभा धृष्ट-भर चुप रही, फिर चौकी—“क्या कांग्रेस में काम करते हो ?”

“हाँ।” कहकर सुमेर चुप हो गए।

काग्रमन्त्रमैत्री के दफ्तर में पहुँचकर सुमेर ने प्रभा को एक कोठरी में ठहरा दिया, और मन्त्रीजी से सब वृत्तांत कहा।

हुए प्रकट करने हुए मन्त्रीजी ने कहा—“यह काजी है। आप नहीं जानते, यह इस प्रकार के व्यभिचारों का केंद्र है। आप ही बतलाइए, क्या किया जाय ?”

“क्या काह उपाय नहीं ?” सुमेर ने एक श्वास लेकर कहा।

मन्त्रीजी विचार में पड़ गए। सुमेर ने कहा—“तो इस आटे हूँ यो का सुधार हो सकता है ?”

“चला, यात करके देखा जाय। दर्ज क्या है। यदि उसे मन्त्रमार्ग पर लाया जा सके, तो कुछ-न-कुछ सेवा अवश्य हो सकती है।” फाकर मन्त्रीजी उठ खड़े हुए।

प्रभा कमर में घड़ी हुई घबरा रही थी। सुमेर और मन्त्रीजी का चेहरा उनका हृदय धक् धक् करने लगा।

मन्त्रीजी ने कहना प्रारंभ किया—“बहन, इस घुरे मार्ग में चलकर शायद तुम्हें क्या मिलना है ? क्या इस घुरे काम में तुम हट नहीं सकती ?”

प्रभा का मुँह सुजा—“गुरा काम करती हूँ या भला, इसमें आप लोगों की क्या ? मुझे जो सझा लगता है, वह करती हूँ। असझा, अब मुक्त जाने दीजिए।”

प्रभा हट नहीं हुई। मन्त्रीजी ने मनमकाया—“यदि भले रास्ते पर शाना घाटों, तो मैं तुम्हारा दण्डनाम कर सकता हूँ। यदि शाता, तो तुम्हारा विवाद भी करा दिया जा सकता है। सोना, पान।

प्रभा विचलित हो गई—“क्या मेरा ज्वात नहीं हुआ है। तब शायद मेरे साथ है। मैं नहीं।”

प्रभा चल दी। सुमेर उसके पीछे-पीछे आया। सड़क पर आकर सुमेर ने कहा—“प्रभा, क्या मेरे साथ रहना पसंद करोगी?”

“चल हट मूर्ख, तेरे-जैसे निकम्मे आदमियों को लेकर क्या चाटूँगी।” कहकर प्रभा एक कटाक्ष मारकर हँस दी।

सुमेर स्तब्ध होकर उसे देखते रह गए। वह हँसती हुई चली गई।

सुमेर ने एक श्वास ली।



{ २४ }

रायपुर पहुँचकर आशा की तबियत बहुत कुछ सुधर गई। कुबेर ने किरण को सारा हाल बता दिया था। किरण अब आशा से उतनी पूणा न करती थी। उसे उस पर अब कण्ठा उध्वज होती थी।

जब आशा स्वस्थ हो गई, तो एक दिन कुबेर ने उससे पूछा —
“सुमेर कहाँ है, बता सकती हो आशा।”

आशा अब पहले की सी आशा न थी। उसने प्रारम्भ से लेकर अब तक सारा हाल कुबेर को सुना दिया। जगदीश की कथा सुनकर तो कुबेर आश्चर्य रह गए।

आशा कहती गई—“रम, तभी से उनका पता नहीं।”

कुबेर ने एक श्वास ली, और बोले—“हम लड़के ने भी अपने को मिटा दिया।”

आशा चुप रही।

कुबेर बोले—“एक बात यदि पूछूँ, तो बुरा तो न मानोगी?”

आशा ने नीचा भिर करके लज्जा-पूर्णक कहा—“पूछिए।”

“अब तुम्हारा क्या ह्मदा है?” कुबेर ने पूछा।

अब भर खूब रहकर आशा ने कहा—“मुनिग कुबेर गये। मैं जीवन के सारे जीवन चुकी। यदि प्रारम्भ में ही आप मुझे प्रहस्य बगल, तो आज मेरी पद दशा न होती। मेरे अथ बगल का दोष बहुत कुछ आपसे तबों पर है। सुमेर के साथ यह अष्ट दाने का भी दोष था ही पर है। वही आपने आज और भी को एक साथ रहने दिया, और एकाद में। वेष्ट कर्म भी अपने को न बचा सकी।

मैं विपत्तियों से घिरी थी, और उसके बाद मैंने उनका मार्ग साध करने के लिये अपने को मिटा दिया। टेवेंड की ओर मेरी कोई अनुरक्ति न थी, किन्तु परिस्थितियों ने पकड़कर मैं उसका आश्रय लेने के लिये विवश हुई। सोचा था, पापमय जीवन थक यों ही बीत जायगा, किन्तु—किन्तु वहाँ भी यह अभागिनी सुख से न बँठ सकी।” कहते-कहते आशा की आँखों से बड़े-बड़े आँसू गिरने लगे।

“उसके बाद” आशा कहती गई—“मैंने उनके सभी आचाराय सहन किए, किन्तु शत में ठुकराई हुई—मैं मुझे संसार में अपना निज का मार्ग ढूँढ़ने के लिये विवश होना पड़ा।”

कुबेर चुपचाप सब सुन रहे थे। आशा रो रही थी।

कुबेर का मुँह खुला—“और उन्हीं सब पापों का फल मैं आज भोग रहा हूँ। आशा! आज मेरा, मेरे मित्रता का जैसा पतन और परदा फाश हुआ है, वह केवल मैं ही समझ रहा हूँ। किन्तु मुझ से वे दिन, जब मैं अपना छोटा सा संसार लेकर सुग्री था। आज मेरा जीवन असफलताओं से भरा है।” कहते-कहते कुबेर उदर पर धड़के पड़े हो गए।

आशा ने कहा—“श्व सेवा का मार्ग ही मेरे लिये सर्वोत्तम मार्ग है। अब रही-सही जिंदगी दश-सेवा में व्यतीत करके अपने पापों का प्रायश्चित्त करना चाहती हूँ। अब मेरी यही एक साध है।”

क्षण-भंग चुप रहकर कुबेर बोले—“किना अच्छा होता, यदि मैं भी देश-सेवा के लिये अपना जीवन डगमर्ग कर सकता।”

आशा ने कहा—“आपसे देश-सेवा अब बहुत दूर चली गई है कुबेर दादा! बुरा न मानिएगा, अब आपकी गणना पूँजीपतियों में है। इस देश का दुर्भाग्य है कि पूँजीपति देश-सेवाक बन ही नहीं सकते। संसार के सभी देशों को पूँजीपतियों से लाभ है किन्तु

परतंत्रता की चेड़ी में जकड़ा हुआ भारत पूँजीपतियों से कोई लाभ नहीं उठा सकता ।”

कुंवर को आशा की चानों में तप्य जान पड़ा । आज महीनों से वह इसी समस्या पर विचार कर रहे थे । उन्होंने कहा—“पूँजीपति बनते ही मनोवृत्तियों में भी परिवर्तन हो जाता है, आशा ! मैं देख रहा हूँ, मुझमें भारी परिवर्तन हो गया है । मैं दूसरों की सहायता नहीं कर सकता । मैं अच्छी भावनाएँ रखते हुए भी उनमें सक्रियता का अभाव देखता हूँ, किमानो ही भलाइँ सोचता हूँ, किन्तु होने दे उन पर मेरे द्वारा अन्याचार । ये सारी बातें मेरी बदली हुई मनोवृत्तियों का प्रत्यक्षीकरण हैं । मैं अब सचमुच पहले-जैसा कुंवर नहीं रहा आशा ।” काले-काले कुंवर का कंठ अवरुद्ध हो गया । आशा के भी नेत्र मजल थे ।

सहसा दरबान ने आकर सूबर नी—“गिजरपुर में आठमी आया है । यहाँ की प्रजा में फिर से विद्रोह फैल रहा है ।”

कुंवर चुपचाप बैठ रहे । वह सोचकर बोले—“मच्छा, भेंजो उसे मेरे पास ।”

गांव के आठमी ने आकर गहर दी—“गिजरपुर में सुधारों की जाति घोषणा न कर देने की वजह से फिर विद्रोह दह गया हुआ है । बाहर से भी नृप नेता आए हुए हैं । सरकार का नाम से नैयर लोगों को सरकार के विरुद्ध भड़काया जा रहा है । बड़ी आपत्त मची हुई है । हम लोगों ने पुलिस से मदद माँगी, किन्तु अभी तक किसी भी प्रकार की मदद नहीं पहुँची ।”

कुंवर ने गांव जाने की तैयारी की । विरुद्ध ने समझाया—“बकी जात दूसर आग में घटने जा रहे हैं ।”

कुंवर हँसकर बोले—“मुझे तो मुझे कीमतों से भी

गया-गुजरा समझ लिया है किरण ! मैं क्या कोई दूध बतारा हूँ, जो कोई घोलकर पी जायगा ?”

किरण भिमियाकर चुप हो गई ।

आशा ने कहा—“मैं भी चलूँ कुवेर दादा !”

कुछ मोच-ममझकर कुवेर ने कहा—“तुम अभी यहीं ठहरो आशा !”

कुवेर अकेले ही गाँव के आदमी के साथ चल दिए ।

किरण चिंतित हो उठी । आशा ने समझाया—“घिना करना बर्बर है भाभी ! उनका कोई कुछ बिगाड़ नहीं सकता ।”

२

६

६

ग्विजरपुर में विद्रोह की आग फैली हुई थी । शानिदेवी के रायपुर चले जाने से जनता यों ही कुवेरचंद के दिक्कत भड़की हुई थी, फिर नए नेता सर्वदानद के आ जाने से लोगों में नया जीवन आ गया था । कारिंदों और गुमास्तों के रंगों में किसी प्रकार का भी सुधार न हुआ था । उनके अत्याचारों ने आग का और भड़काया । सारे गाँव में लगान-बंदी का जोर था । गेन बंदी-बंदी सभाएँ गरकें जमादार की निंदा थी, जाती थी ।

कुवेर जिस समय गाँव पहुँचे, उम्र नमय एक बड़ी भारी सभा हो रही थी, और गाँव के गुमास्ते कारिंदे कुछ लट्टवाजों को लिए हुए सभा भंग करने का प्रयत्न कर रहे थे ।

कुवेर का कोठी पर आना किसी को ज्ञात न हुआ । उन्होंने पढ़ते ही फौरन जमादार को आजा दी कि मुख्य गुमास्ते को हाज़िर करो ।

गुमास्तेजी सभा में हल्लावाजों से सरगना बने हुए थे ।

जब जमादार ने आज्ञा सुनाई, तो वह दौड़ते हुए कुबेर के सामने आ उपस्थित हुए।

उनका वीरोचित चेष्टा देखकर कुबेर को हँसी आ गई। उन्होंने पूछा—“क्या एयर है अर्जुनसिंह?”

“सरकार, सब ठीक है। अब आप आ गए हैं, तो दो मिनट के अंदर सभा भंग कराए देता हूँ। इन लोगों ने सरकार को समझ क्या रक्खा है?” अर्जुनसिंह ने अपनी शक्ति का आभास मालिक को दिखलाते हुए कहा।

कुबेर ने कहा—“सभा भंग न की जायगी। अपने आदमियों को आज्ञा दो कि कौन सभा में हटकर चले जायें।”

अर्जुनसिंह का सारा उत्साह टूट पड़ गया। वह बोला—“लेकिन सरकार....”

बात फाटकर कुबेर ने कहा—“कौन जाकर मेरी आज्ञा का पालन करे। जाओ।”

अर्जुनसिंह आदेश बजाकर चला गया। थोड़ी देर में सभी आदमी वहाँ से हट गए।

कुबेर थोड़ा विभ्रम करने तथा मुँह-हाथ जोकर सभा की ओर चले। अर्जुनसिंह मोटा-सा लट्ट लेकर उनके पीछे चला।

कुबेर ने उसे देखकर आज्ञा दी—“तुम साट जाओ। मेरे साथ किसी ह जाने की आवश्यकता नहीं।”

अर्जुनसिंह लौट गया। सभा में काफी जान था।

सम्राट ने गोपनीय भाषण देने हुए कहा—“आइयो, हमें जमींदार या बटकर नुमाइश परना है। पर मानने वाले तो नहीं, हमें उनसे झूझना पड़ेगा।”

दूसरी भवन कुबेर खुलावा आदर में पर घंट गए। उन्होंने सर्वदास को अपनी परत पर बैठाया। वह सुमेर में।

कुबेर उठकर खड़े हो गए। उन्होंने कहना शुरू किया—
“भाइयो,

आज मैं पहली बार यह घोषणा करने के लिये खड़ा हुआ हूँ कि मैं अपनी ओर से आपके पूज्य नेता श्रीसर्वदानंद पर ही हम गौरव प्रवचन का सारा भार छोड़ता हूँ। वह जिस तरह चाहें

और यह क्या ? सर्वदानंद दौड़कर कुबेर के पैरों पर गिर गए। सभा में हुल्लड़ मच गया। लोग उठकर खड़े हो गए। कुबेर को धीरे-धीरे बेहोशी-सी आ रही थी। वह थोड़ी देर में मूर्च्छित होकर मेज़ पर गिर पड़े।

लोगों में भगदड़ मच गई। सभा में कोई भी इस रहस्य को न समझ सका। सर्वदानंद अन्य लोगों की सहायता से कुबेर को उठाकर कोठी पर ले गए।

कोठी के सारे कर्मचारी दौड़-धूप में लग गए। कोई आश्चर्य में सर्वदानंद की ओर देखता और कोई कुबेर की ओर।

थोड़ी देर में कुबेर को होश आ गया।

दूसरे दिन सबेरे कुबेर सुमेर को साथ लेकर रायपुर चल दिए। किरण सुमेर को देखकर आनन्दाश्रु बहाने लगी। समय ने सबको अधिक निकट कर दिया था। आशा को देखकर सुमेर को बहुत आश्चर्य हुआ।

कुबेर का जी अब हल्का हो चला था। वह अब दिन रात शाम शुद्धि की चिंता में थे।

एक दिन सबेरे उनका पता न था। बहुत गोज करने पर मिहाने एक पत्र पाया गया। उसमें लिखा था—

“जीवन की ये शेष घड़ियाँ अब देश-सेवा में बीतेंगी। मैं वहाँ जा रहा हूँ, जहाँ मुझे शांति मिले।

“मैं जिस वस्तु को पाकर अपने मित्रांगों से गिर गया था,

उसे छोड़कर जाने के लिये मेरा मन छटपटा रहा था सुमेर ! तुम उसे संभालना ।

“आजा ! तुम सुमेर से विवाद करके सुख भोगना । तुम दोनों को मेरी यही अंतिम आज्ञा है ।

“वामना से कुंघेर हो जाने से मेरा महत्त्व घट गया था, आज फोरा नाम का कुंघेर हो जाने पर मैं मनुष्य हूँ ।

“सुमेर ! किरण तुम्हारी माँ हैं । तुम और आशा पति-पत्नी के कर्तव्य पूरे करो ।

तुम्हारा
कुंघेर ।”

उपसंहार

सुमेर और श्यामा नर्दय के लिये एक हो गए ।

पुनेर को फिर किसी ने कभी नहीं देखा । किन्तु उसे ऐसा—

सागा ने स्मृतिपूर्व में । और किरण ने न्यत्रों में ।

Second Class Novel.
